चंद्रकांता संतति तेरहवां भाग

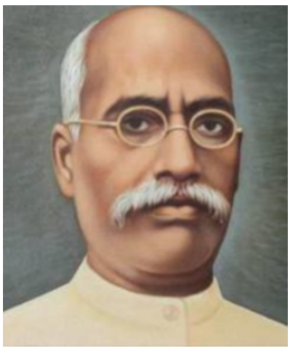

बाबू देवकीनंदन खत्री

चंद्रकांता संतति

तेरहवां भाग

बयान - 1

अब हम अपने पाठकों का ध्यान जमानिया के तिलिस्म की तरफ फेरते हैं क्योंकि कुंअर इन्द्रजीतसिंह और आनन्दसिंह को वहां छोड़े बहुत दिन हो गये और अब बीच में उनका हाल लिखे बिना किस्से का सिलसिला ठीक नहीं होता।

https://www.hindiadda.com/chandrakanta-santati-part-xiii/

हम लिख आये हैं कि कुंअर इन्द्रजीतसिंह ने तिलिस्मी किताब को पढ़कर समझने का भेद आनन्दसिंह को बताया और इतने ही में मन्दिर के पीछे की तरफ से चिल्लाने की आवाज आई। दोनों भाइयों का ध्यान एकदम उस तरफ चला गया और फिर यह आवाज सुनाई पड़ी, "अच्छा-अच्छा, तू मेरा सिर काट ले, मैं भी यही चाहती हूं कि अपनी जिन्दगी में इन्द्रजीतसिंह और आनन्दसिंह को दुःखी न देखूं। हाय इन्द्रजीतसिंह! अफसोस, इस समय तुम्हें मेरी खबर कुछ भी न होगी!" इस आवाज को सुनकर इन्द्रजीतसिंह बेचैन और बेताब हो गये और आनन्दसिंह से यह कहते हुए कि, "कमलिनी की आवाज मालूम पड़ती है" मन्दिर के पीछे की तरफ लपके। आनन्दसिंह भी उनके पीछे-पीछे चले गये।

जब कुंअर इन्द्रजीतसिंह और आनन्दसिंह मन्दिर के पीछे की तरफ पहुंचे तो एक विचित्र वेशधारी मनुष्य पर उनकी निगाह पड़ी। उस आदमी की उम्र अस्सी वर्ष से कम न होगी। उसके सिर, मूंछ, दाढ़ी और भौं इत्यादि के तमाम बाल बर्फ की तरह सफेद हो रहे थे मगर गरदन और कमर पर बुढ़ापे ने अपना दखल जमाने से परहेज कर रक्खा था, अर्थात् न तो उसकी गर्दन हिलती थी और न कमर झुकी हुई थी, उसके चेहरे पर झुर्रियां (बहुत कम) पड़ी हुई थीं मगर फिर भी उसका गोरा चेहरा रौनकदार और रोबीला दिखाई पड़ता था और दोनों तरफ के गालों पर अब भी सुर्खी मौजूद थी। एक नहीं बल्कि हर एक अंगों की किसी न किसी हालत से वह अस्सी वर्ष का बुड्ढा जान पड़ता था। परन्तु कमजोरी, पस्तहिम्मती, बुजदिली और आलस्य इत्यादि के घावों से उसका शरीर बचा हुआ था।

उसकी पोशाक राजों-महाराजों की पोशाकों की तरफ बेशकीमत तो न थी मगर इस योग्य भी न थी कि उससे गरीबी और कमलियाकत जाहिर होती। रेशमी तथा मोटे कपड़े की पोशाक हर जगह से चुस्त और फौजी अफसरों के ढंग की मगर सादी थी। कमर में एक भुजाली लगी हुई थी और बाएं हाथ में सोने की एक बड़ी-सी डलिया या चंगेर लटकाए हुए था। जिस समय वह कुंअर इन्द्रजीतसिंह और आनन्दसिंह की तरफ देखकर हंसा उस समय यह भी मालूम हो गया कि उसके मुंह में जवानों की तरह कुल दांत अभी तक मौजूद हैं और मोती की तरह चमक रहे हैं।

कुंअर इन्द्रजीतसिंह और आनन्दसिंह को आशा थी कि वे इस जगह कमलिनी को नहीं तो किसी न किसी औरत को अवश्य देखेंगे मगर आशा के विपरीत एक ऐसे आदमी को देख उन्हें बड़ा ही ताज्जुब हुआ। इन्द्रजीतसिंह ने वह तिलिस्मी खंजर जो मन्दिर के नीचे वाले तहखाने में पाया था आनन्दसिंह के हाथों में दे दिया और आगे

बढ़कर उस आदमी से पूछा, "यहां से एक औरत के चिल्लाने की आवाज आई थी, वह कहां है?'

बुड्ढा - (इधर-उधर देखके) यहां तो कोई औरत नहीं है।

इन्द्र - अभी-अभी हम दोनों ने उसकी आवाज सुनी थी।

बुड्ढा - बेशक सुनी होगी मगर मैं ठीक कहता हूं कि यहां पर कोई नहीं है।

इन्द्र - तो फिर वह आवाज किसकी थी?

बुड्ढा - वह मेरी ही आवाज थी।

आनन्द - (सिर हिलाकर) कदापि नहीं।

इन्द्र - मुझे इस बात का विश्वास नहीं हो सकता। आपकी आवाज वैसी नहीं है जैसी वह आवाज थी।

बुड्ढा - जो मैं कहता हूं उसका आप विश्वास करें या यह बतावें कि आपको मेरी बात का विश्वास क्योंकर होगा क्या मैं उसी तरह से बोलूं?

इन्द्र - हां यदि ऐसा हो तो हम लोग आपकी बात मान सकते हैं!

बुड्ढा - (उसी तरह से और वे ही शब्द अर्थात् - "अच्छा-अच्छा, तू मेरा सिर काट ले" - इत्यादि बोलकर) देखिए वे ही शब्द और उसी ढंग की आवाज है या नहीं?

आनन्द - (ताज्जुब से) बेशक वही शब्द और ठीक वैसी ही आवाज है।

इन्द्र - मगर इस ढंग से बोलने की आपको क्या आवश्यकता थी?

बुड्ढा - मैं इस तिलिस्म में कल से चारों तरफ घूम-घूमकर आपको खोज रहा हूं। सैकड़ों आवाजें दीं और बहुत उद्योग किया मगर आप लोगों से मुलाकात न हुई। तब मैंने सोचा कदाचित आप लोगों ने यह सोच लिया हो कि इस तिलिस्म के कारखाने में किसी की आवाज का उत्तर देना उचित नहीं और इसी से आप मेरी आवाज पर ध्यान नहीं देते। आखिर मैंने यह तर्कीब निकाली और इस ढंग से बोला जिसमें सुनने के साथ ही आप बेताब हो जायें और स्वयं ढूंढ़कर मुझसे मिलें और आखिर जो कुछ मैंने सोचा था वही हुआ।

इन्द्र - आप कौन हैं और मुझे क्यों बुला रहे थे?

आनन्द - और इस तिलिस्म के अन्दर आप कैसे आए?

बुड्ढा - मैं एक मामूली आदमी हूं और आपका अदना गुलाम हूं, इसी तिलिस्म में रहता हूं और यही तिलिस्म मेरा घर है। आप लोग इस तिलिस्म में आए हैं तो मेरे घर में आए हैं। अतएव आप लोगों की मेहमानी और खातिरदारी करना मेरा धर्म है इसलिए मैं आप लोगों को ढूंढ़ रहा था।

इन्द्र - अगर आप इसी तिलिस्म में रहते हैं और यह तिलिस्म आपका घर है तो हम लोगों को आप दोस्ती की निगाह से नहीं देख सकते क्योंकि हम लोग आपका घर अर्थात् यह तिलिस्म तोड़ने के लिए यहां आए हैं, और कोई आदमी किसी ऐसे की खातिर नहीं कर सकता जो उसका मकान तोड़ने आया हो, तब हम क्योंकर विश्वास कर सकते हैं कि आप हमें अच्छी निगाह से देखते होंगे या हमारे साथ दगा या फरेब न करेंगे?

बुड्ढा - आपका खयाल बहुत ठीक है, ऐसे समय पर इन सब बातों को सोचना और विचार करना बुद्धिमानी का काम है, परन्तु इस बात का आप दोनों भाइयों को विश्वास करना ही होगा कि मैं आपका दोस्त हूं। भला सोचिए तो सही कि मैं दुश्मनी करके आपका क्या बिगाड़ कर सकता हूं। आपकी मेहरबानी से अवश्य फायदा उठा सकता हूं...

इन्द्र - हमारी मेहरबानी से आपका क्या फायदा होगा और आप इस तिलिस्म के अन्दर हमारी क्या खातिर करेंगे इसके अतिरिक्त यह भी बतलाइए कि क्या सबूत पाकर हम लोग आपको अपना दोस्त समझ लेंगे और आपकी बात पर विश्वास कर लेंगे

बुड्ढा - आपकी मेहरबानी से मुझे बहुत कुछ फायदा हो सकता है। यदि आप चाहेंगे तो मेरे घर को अर्थात् इस तिलिस्म को बिल्कुल चौपट न करेंगे, मेरे कहने का मतलब यह नहीं है कि आप इस तिलिस्म को न तोड़ें और उससे फायदा न उठाएं, बल्कि मैं यह कहता हूं कि इस तिलिस्म को उतना ही तोड़िए जितने से आपको गहरा फायदा पहुंचे और कम फायदे के लिए व्यर्थ उन मजेदार चीजों को चौपट न कीजिए जिनके बनाने में बड़े-बड़े बुद्धिमानों ने वर्षों मेहनत की और जिसका तमाशा देखकर बड़े - बड़े होशियारों की अक्ल भी चकरा सकती है। अगर इसका थोड़ा-सा हिस्सा आप छोड़ देंगे तो मेरा खेल-तमाशा बना रहेगा और इसके साथ ही साथ आपके दोस्त

गोपालसिंह की इज्जत और नामबरी में भी फर्क न पड़ेगा और वह तिलिस्म के राजा कहलाने लायक बने रहेंगे। मैं इस तिलिस्म में आपकी खातिरदारी अच्छी तरह कर सकता हूं तथा ऐसे-ऐसे तमाशे दिखा सकता हूं जो आप तिलिस्म तोड़ने की ताकत रखने पर भी बिना मेरी मदद के नहीं देख सकते, हां उसका आनन्द लिए बिना उसको चौपट अवश्य कर सकते हैं। बाकी रही यह बात कि आप मुझ पर भरोसा किस तरह कर सकते हैं, इसका जवाब देना अवश्य ही जरा कठिन है।

इन्द्र - (कुछ सोचकर) तुमसे और राजा गोपालसिंह ने जान-पहिचान है?

बुड्ढा - अच्छी तरह जान-पहिचान है बल्कि हम दोनों में मित्रता है।

इन्द्र - (सिर हिलाकर) यह बातें तो मेरे जी में नहीं अटतीं।

बुड्ढा - सो क्यों?

इन्द्र - इसलिए कि एक तो यह तिलिस्म तुम्हारा घर है, कहो हां।

बुड्ढा - जी हां।

इन्द्र - जब यह तिलिस्म तुम्हारा घर है तो यहां का एक-एक कोना तुम्हारा देखा हुआ होगा बल्कि आश्चर्य नहीं कि राजा गोपालसिंह की बनिस्बत इस तिलिस्म का तुमको ज्यादा मालूम हो।

बुड्ढा - जी हां, बेशक ऐसा ही है।

इन्द्र - (मुस्कुराकर) तिस पर राजा गोपालसिंह से और तुमसे मित्रता है।

बुड्ढा - अवश्य।

इन्द्र - तो तुमने इतने दिनों तक राजा गोपालसिंह को मायारानी के कैदखाने में क्यों सड़ने दिया इसके जवाब में तुम यह नहीं कह सकते कि मुझे गोपालसिंह के कैद होने का हाल मालूम न था या मैं उस सींखचे वाली कोठरी तक नहीं जा सकता था जिसमें वे कैद थे।

इन्द्रजीतसिंह के इस सवाल ने बुड्ढे को लाजवाब कर दिया और वह सिर नीचा करके कुछ सोचने लगा। कुंअर इन्द्रजीतसिंह और आनन्दसिंह ने समझ लिया कि यह झूठा है और हम लोगों को धोखा दिया चाहता है। बहुत थोड़ी देर तक सोचने के बाद

बुड्ढे ने सिर उठाया और मुस्कुराकर कहा, "वास्तव में आप होशियार हैं, बातों की उलझन में भुलावा देकर मेरा हाल जानना चाहते हैं, मगर ऐसा नहीं हो सकता; हां जब आप तिलिस्म को तोड़ लेंगे तो मेरा परिचय भी आपको मिल जायगा, लेकिन यह बात झूठी नहीं हो सकती कि राजा गोपालसिंह मेरे दोस्त हैं और यह तिलिस्म मेरा घर है।"

इन्द्र - आप स्वयम् अपने मुंह से झूठे बन रहे हैं, इसमें मेरा क्या कसूर है। यदि गोपालसिंह आपके दोस्त हैं तो आप मेरी बात का पूरा-पूरा जवाब देकर मेरा दिल क्यों नहीं भर देते हैं

बुड्ढा - नहीं, आपकी इस बात का जवाब मैं नहीं दे सकता कि गोपालसिंह को मैंने मायारानी के कैदखाने से क्यों नहीं छुड़ाया।

इन्द्र - तो फिर मेरा दिल कैसे भरेगा और मैं कैसे आप पर विश्वास करूंगा?

बुड्ढा - इसके लिए मैं दूसरा उपाय कर सकता हूं।

इन्द्र - चाहे कोई उपाय कीजिए परन्तु इस बात का निश्चय अवश्य होना चाहिए कि यह तिलिस्म आपका घर है और गोपालसिंह आपके मित्र हैं।

बुड्ढा - आपको तो केवल इसी बात का विश्वास होना चाहिए कि मैं आपका दुश्मन नहीं हूं।

आनन्द - नहीं-नहीं, हम लोग और किसी की बात का सबूत नहीं चाहते, केवल वह दो बात आप साबित कर दें जो भाईजी चाहते हैं।

बुड्ढा - तो इस समय मेरा यहां आना व्यर्थ ही हुआ! (चंगेर की तरफ इशारा करके) देखिए आप लोगों के खाने के लिए मैं तरह-तरह की चीजें लेता आया था मगर अब लौटा ले जाना पड़ा क्योंकि जब आपको मुझ पर विश्वास ही नहीं है तो इन चीजों को कब स्वीकार करेंगे।

इन्द्र - बेशक मैं इन चीजों को स्वीकार नहीं कर सकता जब तक कि मुझे आपकी बातों पर विश्वास न हो जाय।

आनन्द - (मुस्कुराकर) क्या आपके लड़के-बाले भी इसी तिलिस्म में रहते हैं ये सब चीजें आपके घर की बनी हुई हैं या बाजार से लाए हैं?

बुड्ढा - जी मेरे लड़के-बाले नहीं हैं न दुनियादार ही हूं, यहां तक कि कोई नौकर भी मेरे पास नहीं है - ये चीजें तो बाजार से खरीद लाया हूं।

आनन्द - तो इससे यह भी जाना जाता है कि आप दिन-रात इस तिलिस्म में नहीं रहते, जब कभी खेल-तमाशा देखने की इच्छा होती होगी तो चले आते होंगे।

इन्द्र - खैर जो हो, हमें इन सब बातों से कोई मतलब नहीं, हमारे सामने जब ये अपने सच्चे होने का सबूत लाकर रक्खेंगे तब हम इनसे बातें करेंगे और इनके साथ चलकर इनका घर देखेंगे।

इस बात का जवाब उस बुड्ढे ने कुछ न दिया और सिर झुकाये वहां से चला गया। इन्द्रजीतसिंह और आनन्दसिंह भी यह देखने के लिए कि वह कहां जाता है और क्या करता है उसके पीछे चले। बुड्ढे ने घूमकर दोनों भाइयों को अपने पीछे-पीछे आते देखा मगर इस बात की उसने कुछ परवाह न की और बराबर चलता गया।

हम पहिले के किसी बयान में लिख आये हैं कि इस बाग में पश्चिम की तरफ की दीवार के पास एक कुआं था। वह बुड्ढा उस कुएं की तरफ चला गया और जब उसके पास पहुंचा तो बिना कुछ रुके एकदम उसके अन्दर कूद पड़ा। इन्द्रजीतसिंह और आनन्दसिंह भी उस कुएं के पास पहुंचे और झांककर देखने लगे मगर सिवाय अन्धकार के और कुछ भी दिखाई न दिया।

आनन्द - जब वह बुड्ढा बेधड़क इसके अन्दर कूद गया तो यह कुआं जरूर किसी तरफ निकल जाने का रास्ता होगा!

इन्द्र - मैं भी यही समझता हूं।

आनन्द - यदि कहिये तो मैं इसके अन्दर जाऊं?

इन्द्र - नहीं-नहीं, ऐसा करना बड़ी नादानी होगी, तुम इस तिलिस्म का हाल कुछ भी नहीं जानते, हां मैं इसके अन्दर बेखटके जा सकता हूं क्योंकि मैं तिलिस्मी किताब को पढ़ा चुका हूं और वह मुझे अच्छी तरह याद भी है, मगर मैं नहीं चाहता कि तुम्हें इस जगह अकेला छोड़कर जाऊं।

आनन्द - तो फिर अब क्या करना चाहिए?

इन्द्र - बस सबके पहिले तुम इस तिलिस्मी किताब को पढ़ जाओ और इस तरह याद कर जाओ कि पुनः इसके देखने की आवश्यकता न रहे फिर जो कुछ करना होगा किया जायेगा। इस समय इस बुड्ढे का पीछा करना हमें स्वीकार नहीं है। जहां तक मैं समझता हूं यह दगाबाज बुड्ढा खुद हम लोगों का पीछा करेगा और फिर हमारे पास आयेगा बल्कि ताज्जुब नहीं कि अबकी दफे कोई नया रंग लावे।

आनन्द - जैसी आज्ञा, अच्छा तो वह किताब मुझे दीजिये मैं पढ़ जाऊं।

दोनों भाई लौटकर फिर उसी मन्दिर के पास आये और आनन्दसिंह तिलिस्मी किताब को पढ़ने में लौलीन हुए।

दोनों भाई चार दिन तक उसी बाग में रहे, इस बीच में उन्होंने न तो कोई कार्रवाई की और न कोई तमाशा देखा, हां आनन्दसिंह ने उस किताब को अच्छी तरह पढ़ डाला और सब बातें दिल में बैठा लीं। वह खून में लिखी हुई तिलिस्मी किताब बहुत बड़ी न थी और उसके अन्त में यह बात लिखी हुई थी -

"निःसन्देह तिलिस्म खोलने वाले का जेहन तेज होगा। उसे चाहिए कि इस किताब को पढ़कर अच्छी तरह याद कर ले क्योंकि इसके पढ़ने से ही मालूम हो जायेगा कि यह तिलिस्म खोलने वाले के पास बची न रहेगी, किसी दूसरे काम में लग जायेगी, ऐसी अवस्था में अगर इसके अन्दर लिखी हुई कोई बात भूल जायगी तो तिलिस्म खोलने वाले की जान पर आ बनेगी। जो आदमी इस किताब को आदि से अन्त तक याद न कर सके वह तिलिस्म के काम में कदापि हाथ न लगावे नहीं तो धोखा खायेगा।"

बयान - 2

दिन लगभग पहर भर के चढ़ चुका है। दोनों कुमार स्नान, ध्यान, पूजा से छुट्टी पाकर तिलिस्म तोड़ने में हाथ लगाने के लिए जा रहे थे कि रास्ते में फिर उसी बुड्ढे से मुलाकात हुई। बुड्ढे ने झुककर दोनों कुमारों को सलाम किया और अपनी जेब में से एक चीठी निकालकर कुंअर इन्द्रजीतसिंह के हाथ में देकर बोला, "देखिए, राजा गोपालसिंह के हाथ की सिफारिशी चीठी ले आया हूं, इसे पढ़कर तब कहिए कि मुझ पर भरोसा करने में अब आपको क्या उज्र है?' कुमार ने चीठी पढ़ी और आनन्दसिंह को दिखाने के बाद हंसकर उस बुड्ढे को देखा।

बुड्ढा - (मुस्कुराकर) कहिए अब आप क्या कहते हैं? क्या इस पत्र को आप जाली या बनावटी समझते हैं?

इन्द्र - नहीं-नहीं, यह चीठी जाली नहीं हो सकती, मगर देखो तो सही इस (आनन्दसिंह के हाथ से चीठी लेकर और चीठी में लिखे हुए निशान को दिखाकर) निशान को तुम पहिचानते हो या इसका मतलब तुम जानते हो?

बुड्ढा - (निशान देखकर) इसका मतलब तो आप जानिए या गोपालसिंह जानें, मुझे क्या मालूम, यदि आप बतलाइये तो...।

इन्द्र - इसका मतलब यही है कि यह चीठी बेशक सच्ची है मगर इसमें जो कुछ लिखा है उस पर ध्यान न देना!

बुड्ढा - क्या गोपालसिंह ने आपसे कहा था कि हमारी लिखी जिस चीठी पर ऐसा निशान हो उसकी लिखावट पर ध्यान न देना?

इन्द्र - हां मुझसे उन्होंने ऐसा ही कहा था, इसलिए जाना जाता है कि यह चीठी उन्होंने अपनी इच्छा से नहीं लिखी बल्कि जबर्दस्ती किये जाने के सबब से लिखी है।

बुड्ढा - नहीं-नहीं, ऐसा कदापि नहीं हो सकता, आप भूलते हैं, उन्होंने आपको इस निशान के बारे में कोई दूसरी बात कही होगी।

कुमार - नहीं-नहीं, मैं ऐसा भुलक्कड़ नहीं हूं, अच्छा आप ही बताइये यह निशान उन्होंने क्यों बनाया।

बुड्ढा - यह निशान उन्होंने इसलिए स्थिर किया है कि कोई ऐयार उनके दोस्तों को उनकी लिखावट का धोखा न दे सके। (कुछ सोचकर और हंसकर) मगर कुमार, तुम भी बड़े बुद्धिमान और मसखरे हो!

कुमार - कहो अब मैं तुम्हारी दाढ़ी नोच लूं?

आनन्द - (हंसकर और ताली बजाकर) या मैं नोच लूं?

बुड्ढा - (हंसते हुए) अब आप लोग तकलीफ न कीजिए मैं स्वयं इस दाढ़ी को नोचकर अलग फेंक देता हूं!

इतना कहकर उस बुड्ढे ने अपने चेहरे की दाढ़ी अलग कर दी और इन्द्रजीतसिंह के गले से लिपट गया।

पाठक, यह बुड्ढा वास्तव में राजा गोपालसिंह थे जो चाहते थे कि सूरत बदलकर इस तिलिस्म में कुंअर इन्द्रजीतसिंह और आनन्दसिंह की मदद करें, मगर कुमार की चालाकियों ने उनकी हिकमत लड़ने न दी और लाचार होकर उन्हें प्रकट होना ही पड़ा।

कुंअर इन्द्रजीतसिंह, आनन्दसिंह दोनों भाई राजा गोपालसिंह के गले मिले और उनका हाथ पकड़े हुए नहर के किनारे की पत्थर की एक चट्टान पर बैठकर तीनों आदमी बातचीत करने लगे।

बयान - 3

अब हम रोहतासगढ़ का हाल लिखते हैं। जिस समय बाहर यह खबर आई कि लक्ष्मीदेवी की तबियत ठीक हो गई और वे सब पर्दे के पास आकर बैठ गईं उस समय राजा वीरेन्द्रसिंह ने तेजसिंह की तरफ देखा और कहा, "लक्ष्मीदेवी से पूछना चाहिए कि उसकी तबियत यह कलमदान देखने के साथ ही क्यों खराब हो गई'

इसके पहिले कि तेजसिंह राजा वीरेन्द्रसिंह की बात का जवाब दें या उठने का इरादा करें जिन्न ने कहा, "आश्चर्य है कि आप इसके लिए जल्दी करते हैं!"

जिन्न की बात सुन राजा वीरेन्द्रसिंह मुस्कुराकर चुप हो रहे और भूतनाथ का कागज पढ़ने के लिए तेजसिंह को इशारा किया। आज भूतनाथ का मुकद्दमा फैसला होने वाला है इसलिये भूतनाथ और कमला का रंज और तरद्दुद तो वाजिब ही है मगर इस समय भूतनाथ से सौ गुनी बुरी हालत बलभद्रसिंह की हो रही है। चाहे सभों का ध्यान उस कागज के मुट्ठे की तरफ लगा हो जिसे अब तेजसिंह पढ़ा चाहते हैं मगर बलभद्रसिंह का खयाल किसी दूसरी तरफ है। उसके चेहरे पर बदहवासी और परेशानी छाई है और वह छिपी निगाहों से चारों तरफ इस तरह देख रहा है जैसे कोई मुजरिम निकल भागने के लिए रास्ता ढूंढ़ता हो, मगर भैरोसिंह को मुस्तैदी के साथ अपने ऊपर तैनात पाकर सिर नीचा कर लेता है।

हम यह लिख चुके हैं कि तेजसिंह पहिले उन चीठियों को पढ़ गये जिनका हाल हमारे पाठकों को मालूम हो चुका है, अब तेजसिंह ने उसके आगे वाला पत्र पढ़ना आरम्भ किया जिसमें यह लिखा हुआ था -

"मेरे प्यारे दोस्त,

आज मैं बलभद्रसिंह की जान ले ही चुका था मगर दारोगा साहब ने मुझे ऐसा करने से रोक दिया। मैंने सोचा था कि बलभद्रसिंह के खतम हो जाने पर लक्ष्मीदेवी की शादी रुक जायगी और उसके बदले में मुन्दर को भरती कर देने का अच्छा मौका मिलेगा मगर दारोगा साहब की यह राय न ठहरी। उन्होंने कहा कि गोपालसिंह को भी लक्ष्मीदेवी के साथ शादी करने की जिद हो गयी है ऐसी अवस्था में यदि बलभद्रसिंह को तुम मार डालोगे तो राजा गोपालसिंह दूसरी जगह शादी करने के बदले में बरस दिन अटक जाना मुनासिब समझेंगे और शादी का दिन आ जाना अच्छा नहीं है, इससे यही उचित होगा कि बलभद्रसिंह को कुछ न कहा जाय, लक्ष्मीदेवी की मां को मरे ग्यारह महीने हो ही चुके हैं। महीना भर और बीत जाने दो, जो कुछ करना होगा शादी वाले दिन किया जायगा। शादी वाले दिन जो कुछ किया जायगा उसका बन्दोबस्त भी हो चुका है। उस दिन मौके पर लक्ष्मीदेवी गायब कर दी जायगी और उसकी जगह मुन्दर बैठा दी जायगी और उसके कुछ देर पहिले ही बलभद्रसिंह ऐसी जगह पहुंचा दिया जायगा जहां से पुनः लौट आने की आशा नहीं है, बस फिर किसी तरह का खुटका न रहेगा। यह सब तो हुआ मगर आपने अभी तक फुटकर खर्च के लिए रुपये न भेजे। जिस तरह हो सके उस तरह बन्दोबस्त कीजिये और रुपये भेजिये नहीं तो सब काम चौपट हो जायेगा, आगे आपको अख्तियार है।

वही भूतनाथ?"

वीरेन्द्र - (भूतनाथ की तरफ देखके) क्यों भूतनाथ, यह चीठी तुम्हारे हाथ की लिखी हुई है!

भूत - (हाथ जोड़कर) जी हां महाराज, यह कागज मेरे हाथ का लिखा हुआ है।

वीरेन्द्र - तुमने यह पत्र हेलासिंह के पास भेजा था?

भूत - जी नहीं।

वीरेन्द्र - तुम अभी कह चुके हो कि यह पत्र मेरे हाथ का लिखा है और फिर कहते हो कि नहीं!

भूत - जी मैं यह नहीं कहता कि यह कागज मेरे हाथ का लिखा हुआ नहीं है बल्कि मैं यह कहता हूं कि यह पत्र हेलासिंह के पास मैंने नहीं भेजा था।

वीरेन्द्र - तब किसने भेजा था?

भूत - (बलभद्रसिंह की तरफ इशारा करके) इसने भेजा था और इसी ने अपना नाम भूतनाथ रक्खा था क्योंकि यह वास्तव में लक्ष्मीदेवी का बाप बलभद्रसिंह नहीं है।

वीरेन्द्र - अगर यह चीठी (बलभद्रसिंह की तरफ इशारा करके) इन्होंने हेलासिंह के पास भेजी थी तो फिर तुमने इसे अपने हाथ से क्यों लिखा क्या तुम इनके नौकर या मुहर्रिर थे?

भूत - जी नहीं, इसका कुछ दूसरा ही सबब है, मगर इसके पहिले कि मैं आपकी बातों का पूरा-पूरा जवाब दूं बलभद्रसिंह से दो-चार बातें पूछने की आज्ञा चाहता हूं।

वीरेन्द्र - क्या हर्ज है, जो कुछ पूछना चाहते हो पूछो।

भूत - (बलभद्रसिंह की तरफ देखके) इस कागज के मुट्ठे को तुम शुरू से आखिर तक पढ़ चुके हो या नहीं!

बलभद्र - हां पढ़ चुका हूं।

भूत - जो चीठी अभी पढ़ी गई है इसके आगे वाली चीठियां जो अभी पढ़ी नहीं गईं तुम्हारे इस मुकद्दमे से कुछ सम्बन्ध रखती हैं?

बलभद्र - नहीं!,

भूत - सो क्यों?

बलभद्र - आगे की चीठियों का मतलब हमारी समझ में नहीं आता।

भूत - तो अब आगे वाली चीठियों को पढ़ने की कोई आवश्यकता न रही!

बलभद्र - तेरा कसूर साबित करने के लिए क्या इतनी चीठियां कम हैं जो पढ़ी जा चुकी हैं!

भूत - बहुत हैं बहुत हैं, अच्छा तो अब मैं यह पूछता हूं कि लक्ष्मीदेवी की शादी के दिन तुम कैद कर लिये गये थे?

बलभद्र - हां।

भूत - उस समय बालासिंह कहां था और अब बालासिंह कहां है?

भूतनाथ के इस सवाल ने बलभद्रसिंह की अवस्था फिर बदल दी। वह और भी घबड़ाया-सा होकर बोला, "इन सब बातों के पूछने से क्या फायदा निकलेगा' इतना कहकर उसने दारोगा और मायारानी की तरफ देखा। मालूम होता था कि बालासिंह के नाम ने मायारानी और दारोगा पर भी अपना असर किया जो मायारानी की बगल में एक खम्भे के साथ बंधा हुआ था। वीरेन्द्रसिंह और उनके बुद्धिमान ऐयारों ने भी बलभद्र और दारोगा तथा मायारानी के चेहरे और उन तीनों की इस देखा-देखी पर गौर किया और वीरेन्द्रसिंह ने मुस्कुराकर जिन्न की तरफ देखा।

जिन्न - मैं समझता हूं कि इस बलभद्रसिंह के साथ अब आपको बेमुरौवती करनी होगी।

वीरेन्द्र - बेशक, मगर आप क्या कह सकते हैं कि यह मुकद्दमा आज फैसला हो जायेगा?

जिन्न - नहीं, यह मुकद्दमा इस लायक नहीं है कि आज फैसला हो जाये। यदि आप इस मुकद्दमे की कलई अच्छी तरह खोला चाहते हैं तो इस समय इसे रोक दीजिये और भूतनाथ को छोड़कर आज्ञा दीजिए कि महीने भर के अन्दर जहां से हो सके वहां से असली बलभद्रसिंह को खोज लावे नहीं तो उसके लिए बेहतर न होगा।

वीरेन्द्र - भूतनाथ को किसकी जमानत पर छोड़ दिया जाय।

जिन्न - मेरी जमानत पर।

वीरेन्द्र - जब आप ऐसा कहते हैं तो हमें उज्र नहीं है यदि लक्ष्मीदेवी और लाडिली तथा कमलिनी इसे स्वीकार करें।

जिन्न - उन सभों को भी कोई उज्र नहीं होना चाहिए।

इतने में पर्दे के अन्दर से कमलिनी ने कहा, "हम लोगों को कोई उज्र न होगा, हमारे महाराज को अधिकार है जो चाहें करें!"

वीरेन्द्र - (जिन्न की तरफ देखके) तो फिर कोई चिन्ता नहीं, हम आपकी बात मान सकते हैं। (भूतनाथ से) अच्छा तुम यह तो बताओ कि जब वह चीठी तुम्हारे ही हाथ की लिखी हुई है तो तुम इसे हेलासिंह के पास भेजने से क्यों इन्कार करते हो।

भूत - इसका हाल भी उसी समय मालूम हो जायगा जब मैं असली बलभद्रसिंह को छुड़ाकर ले आऊंगा।

जिन्न - आप इस समय इस मुकद्दमे को रोक ही दीजिये, जल्दी न कीजिये क्योंकि इसमें अभी तो तरह-तरह के गुल खिलने वाले हैं।

बलभद्र - नहीं-नहीं, भूतनाथ को छोड़ना उचित न होगा, बड़ा भारी बेईमान, जालिया, धूर्त, बदमाश है। यदि इस समय छूटकर चल देगा तो फिर कदापि न आवेगा।

तेज - (घुड़ककर बलभद्र से) बस चुप रहो, तुमसे इस बारे में राय ही नहीं ली जाती।

बलभद्र - (खड़े होकर) तो फिर मैं जाता हूं। जिस जगह ऐसा अन्याय हो वहां ठहरना भले आदमियों का काम नहीं।

बलभद्रसिंह उठकर खड़ा हुआ ही था कि भैरोसिंह ने उसकी कलाई पकड़ ली और कहा, "ठहरिये, आप भले आदमी हैं, आपको क्रोध न करना चाहिए, अगर ऐसा कीजियेगा तो भलमनसी में बट्टा लग जायगा। यदि आपको हम लोगों की सोहबत अच्छी नहीं मालूम पड़ती तो आप मायारानी और दारोगा की सोहबत में रक्खे जायेंगे, जिसमें आप खुश हो रहें हम वही करेंगे।"

भैरोसिंह ने बलभद्रसिंह की कलाई पकड़ के कोई नस ऐसी दबाई कि वह बेताब हो गया, उसे ऐसा मालूम हुआ मानो उसके तमान बदन की ताकत किसी ने खेंच ली हो, और वह बिना कुछ बोले इस तरह बैठ गया जैसे कोई गिर पड़ता है। उसकी यह अवस्था देख सभों ने मुस्कुरा दिया।

जिन्न - (वीरेन्द्रसिंह से) अब मैं आपसे और तेजसिंहजी से दो-चार बातें एकान्त में कहा चाहता हूं।

वीरेन्द्र - हमारी भी यही इच्छा है।

इतना कहकर वीरेन्द्रसिंह और तेजसिंह देवीसिंह से कुछ इशारा करके उठ खड़े हुए और दूसरे कमरे की ओर चले गये।

राजा वीरेन्द्रसिंह, तेजसिंह और जिन्न आधे घण्टे तक एकान्त में बैठकर बातचीत करते रहे, सभों को जिन्न के विषय में जितना आश्चर्य था उतना ही इस बात का

निश्चय भी हो गया था कि जिन्न का हाल राजा वीरेन्द्रसिंह, तेजसिंह और भैरोसिंह को मालूम हो गया है परन्तु वे किसी से न कहेंगे और न कोई उनसे पूछ सकेगा।

आधे घंटे के बाद तीनों आदमी कमरे से बाहर निकलकर अपने-अपने ठिकाने आ पहुंचे और तेजसिंह ने देवीसिंह की तरफ देखके कहा, "भूतनाथ को छोड़ देने की आज्ञा हुई है। तुम भूतनाथ और जिन्न के साथ जाओ और हिफाजत के साथ पहाड़ के नीचे पहुंचाकर लौट आओ।"

इतना सुनते ही देवीसिंह ने भूतनाथ की हथकड़ी-बेड़ी खोल दीं और उसको तथा जिन्न को साथ लिये वहां से बाहर चले गये। इसके बाद तेजसिंह पर्दे के अन्दर गये और लक्ष्मीदेवी, कमलिनी तथा लाडिली को कुछ समझा-बुझाकर बाहर निकल आए। बलभद्रसिंह को खातिरदारी और चौकसी के साथ हिफाजत में रखने के लिए भैरोसिंह के हवाले किया गया और बाकी कैदियों को कैदखाने में पहुंचाने की आज्ञा देकर राजा वीरेन्द्रसिंह बाहर चले आए तथा अदालत बर्खास्त कर दी गई।

बयान - 4

जब जिन्न और भूतनाथ को पहाड़ के नीचे पहुंचाकर देवीसिंह चले गए तो वे दोनों आपस में नीचे लिखी बातें करते हुए पूरब की तरफ रवाना हुए -

भूत - निःसन्देह आपने मुझ पर बड़ी कृपा की, यदि आज आप मेरे सहायक न होते तो मैं तबाह हो चुका था।

जिन्न - सो सब तो ठीक है, मगर देखो आज हमने तुमको अपनी जमानत पर इसलिए छुड़ा दिया है कि तुम जिस तरह हो असली बलभद्रसिंह को खोज निकालो और उन्हें अपने साथ लेकर राजा वीरेन्द्रसिंह के पास हाजिर हो जाओ, लेकिन ऐसा न करना कि बलभद्रसिंह का पता लगाने के बदले तुम स्वयं अन्तर्ध्यान हो जाओ और हमको राजा वीरेन्द्रसिंह के आगे झूठा करो।

भूत - नहीं-नहीं, ऐसा कदापि नहीं हो सकता। यदि मुझे नेकनामी के साथ राजा वीरेन्द्रसिंह का ऐयार बनने का शौक न होता तो मैं इन बखेड़ों में क्यों पड़ता बिना कुछ पाये उनका इतना काम क्यों करता रुपये की मुझे कुछ परवाह न थी, मैं किसी दूसरे देश में चला जाता और खुशी के साथ जिन्दगी बिताता मगर नहीं, मुझे राजा वीरेन्द्रसिंह के साथ रहने का बड़ा उत्साह है और जिस दिन से राजा गोपालसिंह का

पता लगा है उसी दिन से मैं उनके दुश्मनों की खोज में लगा हूं और बहुत-सी बातों का पता लगा भी चुका हूं।

जिन्न - (बात काटकर) तो क्या तुमको इस बात की खबर न थी कि मायारानी ने गोपालसिंह को कैद करके किसी गुप्त स्थान में रख दिया है?

भूत - नहीं, बिल्कुल नहीं।

जिन्न - और इस बात की भी खबर न थी कि मायारानी वास्तव में लक्ष्मीदेवी नहीं है?

भूत - इस बात को तो मैं अच्छी तरह जानता था।

जिन्न - तो तुमने राजा गोपालसिंह के आदमियों को इस बात की खबर क्यों नहीं की?

भूत - मैंने इसलिए मायारानी का असल हाल किसी से नहीं कहा कि मुझे राजा गोपालसिंह के मरने का पूरा-पूरा विश्वास हो चुका था और उसके पहिले मैं रणधीरसिंहजी के यहां नौकर था, तब मुझे दूसरे राज्य के भले-बुरे कामों से मतलब ही क्या था?

जिन्न - तुमसे और हेलासिंह से जब दोस्ती थी तब तुम किसके नौकर थे?

भूत - मुझसे और हेलासिंह से कभी दोस्ती थी ही नहीं! मैं तो आपसे कैदखाने के अन्दर ही कह चुका हूं कि राजा गोपालसिंह के छूटने के बाद मैंने उन कागजों का पता लगाया है जो इस समय मेरे ही साथ दुश्मनी कर रहे हैं और...।

जिन्न - हां-हां, जो कुछ तुमने कहा था मुझे बखूबी याद है, अच्छा अब यह बताओ कि इस समय तुम कहां जाओगे और क्या करोगे?

भूत - मैं खुद नहीं जानता कि कहां जाऊंगा और क्या करूंगा बल्कि यह बात मैं आप ही से पूछने वाला था।

जिन्न - (ताज्जुब से) क्या तुम्हें मालूम नहीं है कि बलभद्रसिंह को किसने कैद किया और अब वह कहां है?

भूत - इतना तो मैं जानता हूं कि बलभद्रसिंह को मायारानी के दारोगा ने कैद किया था मगर यह नहीं मालूम कि इस समय वह कहां है।

जिन्न - अगर ऐसा ही है तो कमलिनी के तिलिस्मी मकान के बाहर तुमने तेजसिंह से क्यों कहा था कि मेरे साथ कोई चले तो मैं असली बलभद्रसिंह को दिखा दूंगा इस बात से तो तुम खुद झूठे साबित होते हो!

भूत - जी हां, बेशक मैंने नादानी की जो ऐसा कहा, मगर मुझे इस बात का निश्चय हो चुका है कि बलभद्रसिंह अभी तक जीता है और उसे तिलिस्मी दारोगा ने कैद कर लिया था।

जिन्न - इसी से तो मैं पूछता हूं कि अब तुम कहां जाओगे और क्या करोगे?

भूत - अगर वह दारोगा मेरे काबू में होता तब तो मैं सहज ही में पता लगा लेता मगर अब मुझे इसके लिए बहुत कुछ उद्योग करना होगा, तथापि इस समय मैं जमानिया में राजा गोपालसिंह के पास जाता हूं, यदि उन्होंने मेरी मदद की तो अपना काम बहुत जल्द कर सकूंगा, मगर आशा नहीं कि वे मेरी मदद करेंगे क्योंकि जब वे मेरे मुकद्दमे का हाल सुनेंने तो जरूर मुझको नालायक बतायेंगे। (कुछ सोचकर) अभी तक यह भी मुझे मालूम नहीं हुआ कि आप कौन हैं, अगर जानता तो कहता कि राजा गोपालसिंह के नाम की आप एक चीठी लिख दें।

जिन्न - मेरा परिचय तुम्हें सिवाय इसके और कुछ नहीं मिल सकता कि मैं जिन्न हूं और हर जगह पहुंचने की ताकत रखता हूं। खैर, तुम राजा गोपालसिंह के पास जाओ और उनसे मदद मांगो, मैं तुम्हें एक सिफारिशी चीठी देता हूं, तुम्हारे पास कागज-कलम-दवात है?

भूत - जी हां, आपकी कृपा से मुझे मेरी ऐयारी का बटुआ मिल गया है और उसमें सब सामान मौजूद है।

इतना कहकर भूतनाथ रुक गया और एक पेड़ के नीचे बैठने के लिए जिन्न को कहा मगर जिन्न ने ऐसा करने से इन्कार किया और आगे की तरफ इशारा करके कहा, "उस पेड़ के नीचे चलकर हम ठहरेंगे क्योंकि वहां हमारा घोड़ा मौजूद है।"

थोड़ी ही देर में दोनों आदमी उस पेड़ के नीचे जा पहुंचे। भूतनाथ ने देखा कि कसे-कसाये दो उम्दा घोड़े उस पेड़ की जड़ के साथ बागडोर के सहारे बंधे हैं और

जिन्न ही की सूरत-शक्ल, चाल-ढाल का एक आदमी उनके पास टहल रहा है जो जिन्न के वहां पहुंचते ही सलाम करके एक किनारे खड़ा हो गया। जिन्न ने भूतनाथ से कलम, दवात और कागज लेकर कुछ लिखा और भूतनाथ को देकर कहा, "यह चीठी राजा गोपालसिंह को देना, बस अब तुम जाओ।" इतना कहकर जिन्न एक घोड़े पर सवार हो गया, जिन्न ही की सूरत का दूसरा आदमी जो वहां मौजूद था दूसरे घोड़े पर सवार हो गया और भूतनाथ के देखते ही देखते दूर जाकर वे दोनों उसकी नजरों से गायब हो गये। भूतनाथ तरद्दुद और परेशानी के सबब से उदास और सुस्त हो गया था इसलिए थोड़ी देर तक आराम करने की नीयत से उसी पेड़ के नीचे बैठ जाने के बाद उस पत्र को पढ़ने लगा जो जिन्न ने राजा गोपालसिंह के लिए लिख दिया था। मगर हजार कोशिश करने पर भी उससे वह चीठी पढ़ी न गई क्योंकि सिवाय टेढ़ी-मेढ़ी और पेचीली लकीरों के किसी साफ अक्षर का उसके अन्दर भूतनाथ को पता ही न लगा।

आधे घण्टे तक आराम करने के बाद भूतनाथ उठ खड़ा हुआ और 'लामाघाटी'[1] की तरफ रवाना हुआ।

1. लामाघाटी एक पहाड़ी का स्थान का नाम है।

बयान - 5

भूतनाथ अब बिल्कुल आजाद हो गया। इस समय उसकी ताकत उतनी ही है जितनी आज के दस दिन पहिले थी और जितने आज के दस दिन पहिले उसके ताबेदार थे उतने ही आज भी हैं। पाठक जानते ही हैं कि भूतनाथ अकेला नहीं है बल्कि बहुत से आदमी उसके नौकर भी हैं जो इधर-उधर घूम-फिरकर उसका काम किया करते हैं। भूतनाथ ने जब से नकली बलभद्रसिंह से यह सुना कि उसकी बहुत प्यारी चीज मेरे कब्जे में है जिसे वह 'लामाघाटी' में छोड़ आया था, तब से वह और भी परेशान हो गया था। वह बहुत प्यारी चीज क्या थी बस वही उसकी स्त्री जिसके पेट से नानक पैदा हुआ था और जिसे उसने नागर की मेहरबानी से पुनः पा लिया था, वास्तव में भूतनाथ अपनी उस प्यारी स्त्री को लामाघाटी में ही छोड़ आया था।

भूतनाथ इस समय जमानिया जाने के बदले लामाघाटी ही की तरफ रवाना हुआ और तीसरे दिन संध्या समय उस घाटी में जा पहुंचा जिसे वह अपना घर समझता था।

यहां पर हम पाठकों के दिल में लामाघाटी की तस्वीर खेंचकर भूतनाथ की ताकत और उसके स्वभाव या खयाल का कुछ अन्दाज करा देना मुनासिब समझते हैं।

लामाघाटी में किसी अनजान आदमी का जाना बहुत कठिन ही नहीं बल्कि असम्भव था। ध्यानशक्ति की सहायता से यदि आप वहां जायं तो सबके पहिले एक छोटी-सी पहाड़ी मिलेगी जिस पर चढ़ने के लिए एक बारीक पगडण्डी दिखाई देगी। जब उस पगडण्डी की राह से पहाड़ी के ऊपर चढ़ जायेंगे तो तीन तरफ मैदान और पश्चिम की तरफ केवल आधा कोस की दूरी पर एक बहुत ऊंचा पहाड़ मिलेगा। उसके पास जाने पर मालूम होगा कि ऊपर चढ़ने के लिए कोई रास्ता या पगडण्डी नहीं है और न पहाड़ के दूसरी तरफ उतर जाने का ही मौका है। परन्तु खोजने की कोई आवश्यकता नहीं, आप उस पहाड़ी के नीचे पहुंचकर दाहिनी तरफ घूम जाइये और जब तक पानी का एक छोटा-सा झरना आपको न मिले बराबर चले ही जाइये। वह दो-तीन हाथ चौड़ा झरना आपका रास्ता काट के बहता होगा, उसे लांघने की कोई आवश्यकता नहीं, आप बाईं तरफ आंख उठाकर देखेंगे तो बीस-पचीस हाथ की ऊंचाई पर एक छोटी-सी गुफा दिखाई देगी, आप बेधड़क उस गुफा में चले जाइये जिसके अन्दर बिल्कुल अन्धकार होगा और बनिस्बत बाहर के अन्दर गर्मी कुछ ज्यादे होगी। कोस भर तक बराबर उस गुफा के अन्दर ही अन्दर चलने के बाद जब आप बाहर निकलेंगे तो एक हरा-भरा छोटा-सा मैदान नजर आयेगा। वह मैदान छोटे-छोटे जंगली फलों और लताओं से ऐसा भरा होगा कि दूर से देखने वालों को आनन्द मगर उसके अन्दर जाने वाले के लिए आफत समझिये। उसमें जाने वाला तीस-चालीस कदम मुश्किल से जाने के बाद इस तरह से फंस जायगा कि निकलना कठिन होगा। उस मैदान के किनारे-किनारे दाहिनी तरफ और फिर बाईं तरफ घूम जाना होगा और जब आप पश्चिम और उत्तर के कोने में पहुंचेंगे तो और एक गुफा मिलेगी। आप उस गुफा के अन्दर चले जाइये। लगभग दो सौ कदम जाने के बाद जब आप बाहर निकलेंगे तो अनगढ़ और मोटे-मोटे पत्थर के ढोकों से बनी हुई दीवारें मिलेंगी जिनके बीचोंबीच में एक बहुत बड़ा लकड़ी का दरवाजा लगा है। यदि दरवाजा खुला है तो आप दीवार के उस पार चले जाइये और एक पुरानी मगर बहुत बड़ी इमारत पर नजर डालिए। यद्यपि मकान बहुत पुराना है और कई जगह से टूट भी गया है तथापि जो कुछ बचा है वह बहुत मजबूत और पचासों बरसात सहने योग्य है, जिसमें अब भी कई बड़े-बड़े दालान और कोठरियां मौजूद हैं और उसी मकान या स्थान का नाम 'लामाघाटी' है। भूतनाथ के आदमी या नौकर-चाकर इसी मकान में रहते हैं और अपनी स्त्री को भी वह इसी जगह छोड़ गया था। उसके सिपाही जो बड़े ही दिमागदार, बहुत कट्टर और साथ ही इसके ईमानदार भी थे गिनती के पचास से कम न थे और भूतनाथ के खजाने की हिफाजत बड़ी मुस्तैदी और नेकनीयती के साथ करते थे तथा बड़े-बड़े कठिन कामों को पूरा करने के लिए भूतनाथ की आज्ञा पाते ही मुस्तैद हो जाते थे।

उस मकान के चारों तरफ एक बहुत बड़ा मैदान छोटे-छोटे जंगली खूबसूरत पौधों से हरा-भरा बहुत ही खूबसूरत मालूम पड़ता था और उसके बाद भी चारों तरफ की पहाड़ियों के ऊपर जहां तक निगाह काम कर सकती थी छोटे-छोटे खूबसूरत पेड़-पौधे दिखाई पड़ते थे।

भूतनाथ इसी लामाघाटी में पहुंचा। पहुंचने के साथ ही चारों तरफ से उसके आदमियों ने खुशी-खुशी उसे घेर लिया और कुशल-मंगल पूछने लगे। भूतनाथ सभों से हंसकर मिला और 'हां सब ठीक है, बहुत अच्छा है, मेरा आना जिस लिये हुआ उसका हाल जरा ठहरकर कहूंगा' इत्यादि कहता हुआ अपनी स्त्री के पास चला गया, जो बहुत दिनों से उसे देखे बिना बेताब हो रही थी। हंसी-खुशी से मिलने के बाद दोनों में यों बातचीत होने लगी -

स्त्री - तुम बहुत दुबले और उदास मालूम पड़ते हो!

भूत - हां, इधर कई दिन मुसीबत में कटे हैं।

स्त्री - (चौंककर) सो क्या, कुशल तो है?

भूत - कुशल क्या, जान बच गई यही गनीमत है।

स्त्री - सो क्या तुम्हारा भेद खुल गया?

भूत - (ऊंची सांस लेकर) हां कुछ खुल ही गया।

स्त्री - (हाथ मलकर) हाय - हाय, यह तो बड़ा ही गजब हुआ!

भूत - बेशक गजब हो गया।

स्त्री - फिर तुम बचकर कैसे निकल आये?

भूत - ईश्वर ने एक सहायक भेज दिया जिसने अपनी जमानत पर महीने भर के लिए मुझे छोड़ दिया।

स्त्री - तो क्या महीने भर के बाद तुम्हें फिर हाजिर होना पड़ेगा?

भूत - हां।

स्त्री - किसके आगे?

भूत - राजा वीरेन्द्रसिंह के आगे।

स्त्री - राजा वीरेन्द्रसिंह से क्या सरोकार तुमने उनका तो कुछ बिगाड़ा नहीं था।

भूत - इतनी ही तो कुशल है कि वह दूसरी जगह जाने के बदले सीधा लक्ष्मीदेवी के पास चला गया।

स्त्री - (चौंककर) हैं, क्या लक्ष्मीदेवी जीती है?

भूत - हां वह जीती है, मुझे इस बात की खबर कुछ भी न थी कि कमलिनी के साथ जो तारा रहती है वह वास्तव में लक्ष्मीदेवी है और बालासिंह को यह बात मालूम हो गई थी, इसलिए वह सीधा लक्ष्मीदेवी के पास चला गया। यदि मुझे पहिले लक्ष्मीदेवी की खबर लग गई होती तो आज मैं राजा वीरेन्द्रसिंह के आगे अपनी तारीफ सुनता होता।

स्त्री - तुम तो कहते थे कि बालासिंह मर गया।

भूत - हां, मैं ऐसा ही जानता था।

स्त्री - उसी ने तो तुम्हारी सन्दूकड़ी चुराई थी!

भूत - हां, जब उसने सन्दूकड़ी चुराई थी तभी तो मैं अधमुआ हो चुका था। मगर यह सुनकर कि वह मर गया मैं निश्चिन्त भी हो गया था, परन्तु जिस समय वह यकायक मेरे सामने आ खड़ा हुआ, मुझे बड़ा ही आश्चर्य हुआ। उसके हाथ में वह गठरी उसी कपड़े में बंधी उसी तरह लटक रही थी जैसी तुम्हारे सन्दूक से चोरी गई थी और जिसे देखने के साथ ही मैं पहिचान गया। ओफ, मैं नहीं कह सकता कि उस समय मेरी क्या हालत थी। मेरे होशोहवास दुरुस्त न थे और मैं अपने को जिन्दा नहीं समझता था। इस बात के दो-चार दिन पहले जब मैं राजा गोपालसिंह के साथ किशोरी और कामिनी को कमलिनी के मकान में पहुंचाने गया था तो उसी समय तारा पर मुझे शक हो गया था मगर अपनी भलाई का कोई दूसरा ही रास्ता सोचकर मैं उस समय चुप रहा परन्तु जिस समय बालासिंह से यकायक मुलाकात हो गई और उसने उस गठरी की तरफ इशारा करके मुझसे कहा कि इसमें सोहागिन तारा की किस्मत बन्द है उसी समय मुझे विश्वास हो गया कि तारा वास्तव में लक्ष्मीदेवी है और वह कागज का मुट्ठा भी इसी ने चुरा लिया है जिसे मैंने बड़ी मेहनत से बटोरकर नकल करके रक्खा था। मैं उस समय बदहवास हो गया और अफसोस करने लगा कि

जिन कागजों से मैं फायदा उठाने वाला था वही कागज अब मुझे चौपट करेंगे क्योंकि वह उन्हीं कागजों से मुझी को दोषी ठहराने का उद्योग करेगा। यदि वह सन्दूकड़ी उसके पास न होती तो मैं हताश न होकर और कोई बन्दोबस्त करता परन्तु उस सन्दूकड़ी के खयाल ही से मैं पागल हो गया, उस समय तो मैं बिल्कुल ही मुर्दा हो गया जब उसकी बेगम पर मेरी निगाह पड़ी।

स्त्री - (चौंककर) क्या बेगम भी जीती है!

भूत - हां, उस समय वह उसके साथ थी और थोड़ी ही दूर पर एक झाड़ी के अन्दर छिपी हुई थी।

स्त्री - यह बड़ा ही अंधेर हुआ, अगर तुम्हें मालूम होता कि वह जीती है तो तुम अपना नाम भूतनाथ काहे को रखते।

भूत - नहीं अगर मुझे उसके मरने में कुछ भी शक होता तो मैं अपना नाम भूतनाथ न रखता। केवल इतना ही नहीं, उसने तो मुझे उस समय एक ऐसी बात कही थी जिससे मेरी बची-बचाई जान भी निकल गई और मैं ऐसा कमजोर हो गया कि उसके साथ लड़ने योग्य भी न रहा।

स्त्री - सो क्या?

भूत - उसने तुम्हारी तरफ इशारा करके मुझसे कहा कि 'तुम्हारी बहुत ही प्यारी चीज मेरे कब्जे में है जो तुम्हारे बाद बड़ी तकलीफ में पड़ जायगी और जिसे तुम लामाघाटी में छोड़ आये थे' और यही सबब है कि छूटने के साथ ही सबसे पहिले मैं इस तरफ आया, मगर ईश्वर को धन्यवाद देता हूं कि तुम उस शैतान के हाथ से बची रहीं और तुम्हें मैं इस जगह राजी-खुशी देख रहा हूं।

स्त्री - उसकी क्या मजाल कि यहां आ सके, उसे स्वप्न में भी यहां का रास्ता मालूम नहीं हो सकता।

भूत - सो तो मैं समझता हूं। परन्तु 'लामाघाटी' का नाम लेने से मुझे उसकी बात पर विश्वास हो गया, मैंने सोचा कि यदि वह लामाघाटी तक न गया होता तो लामाघाटी का नाम भी उसे मालूम न होता और...।

स्त्री - नहीं-नहीं, लामाघाटी का नाम किसी दूसरे सबब से उसे मालूम हुआ होगा।

भूत - बेशक ऐसा ही है, खैर तुम्हारी तरफ से तो मैं निश्चिन्त हो गया मगर अब अपनी जान बचाने के लिए मुझे असली बलभद्रसिंह का पता लगाना चाहिए।

स्त्री - अब तुम अपना खुलासा हाल उस दिन से कह जाओ जिस दिन से तुम मुझसे जुदा हुए हो।

भूतनाथ ने अपना कुल हाल अपनी स्त्री को कह सुनाया और इसके बाद थोड़ी देर तक बातचीत करके बाहर निकल आया। एक दालान में जिसमें सुन्दर बिछावन बिछा हुआ था और रोशनी बखूबी हो रही थी, उसके संगी-साथी या सिपाही सब बैठे उसके आने की राह देख थे। भूतनाथ के आते ही वे सब अदब के तौर पर उठ खड़े हुए तथा उसके बैठने के बाद उसकी आज्ञा पाकर बैठ गये और बातचीत होने लगी।

भूत - कहो तुम लोग अच्छे तो हो?

सब - जी आपके अनुग्रह से हम लोग अच्छे हैं।

भूत - ऐसा ही चाहिए।

एक - आप इतने दुबले और उदास क्यों हो रहे हैं?

भूत - मैं एक भारी आफत में फंस गया था बल्कि अभी तक फंसा ही हुआ हूं।

सब - सो क्या? सो क्यों?

भूत - मैं तुमसे सब-कुछ कहता हूं क्योंकि तुम लोग मेरे खैरखाह हो और मुझे तुम लोगों का बहुत सहारा रहता है।

सब - हम लोग आपके ताबेदार हैं और एक अदने इशारे पर जान देने के लिए तैयार हैं, औरों की तो दूर रहे खास राजा वीरेन्द्रसिंह से भिड़ जाने की हिम्मत रखते हैं।

भूत - बेशक ऐसा ही है और इसीलिए मैं कोई बात तुम लोगों से नहीं छिपाता।

इतना कहकर भूतनाथ ने अपना हाल कहना आरम्भ किया। जो कुछ अपनी स्त्री से कह चुका था वह तथा और भी बहुत-सी बातें उसने उन लोगों से कहीं और इसके बाद कई बहादुरों को कई तरह के काम करने की आज्ञा दे फिर अपनी स्त्री के पास चला गया।

दूसरे दिन सबेरे जब भूतनाथ बाहर आया तब मालूम हुआ कि उसके बहादुर सिपाहियों में से चालीस आदमी उसकी आज्ञानुसार 'लामाघाटी' के बाहर जा चुके हैं। भूतनाथ भी वहां से रवाना होने के लिए तैयार ही था और अपनी स्त्री से बिदा होकर बाहर निकला था, अस्तु वह भी एक आदमी को लेकर चल पड़ा और दो ही घण्टे बाद 'लामाघाटी' से बाहर मैदान में जमानिया की तरफ जाता हुआ दिखाई देने लगा।

बयान - 6

जो कुछ हम ऊपर लिख आये हैं उसके कई दिन बाद जमानिया में दोपहर दिन के समय जब राजा गोपालसिंह भोजन इत्यादि से छुट्टी पाकर अपने कमरे में चारपाई पर लेटे हुए एक-एक करके बहुस-सी चीठियों को पढ़-पढ़कर कुछ सोच रहे थे उसी समय चोबदार ने भूतनाथ के आने की इत्तिला की। गोपालसिंह ने भूतनाथ को अपने सामने हाजिर करने की आज्ञा दी। भूतनाथ हाजिर हुआ और सलाम करके चुपचाप खड़ा हो गया। उस समय वहां पर इन दोनों के सिवाय और कोई न था।

गोपाल - कहो भूतनाथ! अच्छे तो हो, इतने दिनों तक कहां थे और क्या करते थे?

भूत - आपसे बिदा होकर मैं बड़ी मुसीबत में पड़ गया।

गोपाल - सो क्या!

भूत - कमलिनीजी के मकान की बर्बादी का हाल तो आपको मालूम हुआ ही होगा?

गोपाल - हां, मैं सुन चुका हूं कि कमलिनी के मकान को दुश्मनों ने उजाड़ दिया और उसके यहां जो कैदी थे वे भाग गये।

भूत - ठीक है, तो क्या आप किशोरी, कामिनी और तारा का हाल भी सुन चुके हैं जो उस मकान में थीं!

गोपाल - उनका खुलासा हाल तो मुझे मालूम नहीं हुआ मगर इतना सुन चुका हूं कि अब वे सब कमलिनी के साथ रोहतासगढ़ में जा पहुंची हैं।

भूत - ठीक है मगर उन पर कैसी मुसीबत आ पड़ी थी उसका हाल आपको शायद मालूम नहीं।

गोपाल - नहीं बल्कि उसका खुलासा हाल दरियाफ्त करने के लिए मैंने एक आदमी रोहतासगढ़ में ज्योतिषीजी के पास भेजा है और एक पत्र भी लिखा है मगर अभी तक जवाब नहीं आया। तो क्या कमलिनी के साथ तुम भी वहां गये थे!

भूत - जी हां, मैं कमलिनीजी के साथ था।

गोपाल - तब तो मुझे सब खुलासा हाल तुम्हारी ही जुबानी मालूम हो सकता है, अच्छा कहो कि क्या हुआ?

भूत - मैं सब हाल आपसे कहता हूं और उसी के बीच में अपनी तबाही और बर्बादी का हाल भी कहता हूं।

इतना कहकर भूतनाथ ने किशोरी, कमलिनी, लक्ष्मीदेवी, भगवनिया, श्यामसुन्दरसिंह और बलभद्रसिंह का कुल हाल जो ऊपर लिखा जा चुका है कहा और इसके बाद रोहतासगढ़ किले के अन्दर जो कुछ हुआ था और कृष्णा जिन्न ने जो कुछ काम किया था वह सब भी कहा!

पलंग पर पड़े राजा गोपालसिंह भूतनाथ की कुल बातें सुन गए और जब वह चुप हो गया तो उठकर एक ऊंची गद्दी पर जा बैठे जो पलंग के पास ही बिछी हुई थी। थोड़ी ही देर तक कुछ सोचने के बाद वे बोले, "हां तो इस ढंग से मालूम हुआ कि तारा वास्तव में लक्ष्मीदेवी है।"

भूत - जी हां, मुझे इस बात की कुछ भी खबर न थी।

गोपाल - यह हाल बड़ा ही दिलचस्प है, अच्छा कृष्णा जिन्न की चीठी मुझे दो, मैं देखूं।

भूत - (चीठी देकर) आशा है कि इसमें कोई बात मेरे विरुद्ध लिखी हुई न होगी।

गोपाल - (चीठी देखकर) नहीं, इसमें तो तुम्हारी सिफारिश की है और मुझे मदद देने के लिए लिखा है।

भूत - कृष्णा जिन्न को आप जानते हैं?

गोपाल - वह मेरा दोस्त है, लड़कपन ही से मैं उसे जानता हूं, उसे मेरे कैद होने की कुछ भी खबर न थी, पांच-सात दिन हुए हैं जब वह मुबारकबाद देने के लिए मेरे पास आया था।

भूत - तो मैं उम्मीद करता हूं कि इस काम में आप मेरी मदद करेंगे!

गोपाल - हां-हां, मैं इस काम में हर तरह से मदद देने के लिए तैयार हूं क्योंकि यह काम वास्तव में मेरा ही काम है, मगर मेरी समझ में नहीं आता कि क्या मदद कर सकूंगा क्योंकि मुझे इन बातों की कुछ भी खबर न थी और न है।

भूत - जिस तरह की मदद मैं चाहता हूं, अर्ज करूंगा, मगर उसके पहिले मैं यह जानना चाहता हूं कि क्या आप राजा वीरेन्द्रसिंह और कमलिनी इत्यादि से मिलने के लिए रोहतासगढ़ जायेंगे?

गोपाल - जब तक राजा वीरेन्द्रसिंह मुझे न बुलावेंगे मैं अपनी मर्जी से न जाऊंगा और न मुझे कमलिनी या लक्ष्मीदेवी से मिलने की जल्दी ही है, जब तुम्हारे मुकद्दमे का फैसला हो जायगा तब जैसा होगा देखा जायगा।

गोपालसिंह की बात सुनकर भूतनाथ को बड़ा ताज्जुब हुआ क्योंकि लक्ष्मीदेवी की खबर सुनकर न तो उनके चेहरे पर किसी तरह की खुशी दिखाई दी और न बलभद्रसिंह का हाल सुनकर उन्हें रंज ही हुआ। कमरे के अन्दर पैर रखते ही भूतनाथ ने जिस शान्त भाव से उन्हें देखा था वैसी ही सूरत में अब भी देख रहा था। आखिर बहुत कुछ सोचने-विचारने के बाद भूतनाथ ने कहा, "अपने खास बाग में मायारानी के कमरे की तलाशी ली थी?'

गोपाल - तुम भूलते हो। खास बाग के किसी कमरे या कोठरी की तलाशी लेने से कोई काम नहीं चल सकता। या तो तुम हेलासिंह के किसी पक्षपाती को जो उस काम में शरीक रहा हो गिरफ्तार करो या दारोगा कम्बख्त को दुःख देकर पूछो, मगर अफसोस इतना ही है कि दारोगा राजा वीरेन्द्रसिंह के कब्जे में है और उसके विषय में उनको कुछ लिखना मैं पसन्द नहीं करता।

गोपालसिंह की इस बात से भूतनाथ को और भी आश्चर्य हुआ और उसने कहा, "तलाशी से मेरा और कोई मतलब नहीं है, मुझे ठीक पता लग चुका है कि मायारानी के पास तस्वीरों की एक किताब थी और उसमें उन लोगों की तस्वीरें थीं जो इस काम में उसके मददगार थे, बस मेरा मतलब उसी किताब के पाने से है और कुछ नहीं।"

गोपाल - हां ठीक है, मुझे इस प्रकार की एक किताब मिली थी मगर उस समय बड़े क्रोध में था इसलिए कम्बख्त नकली मायारानी का असबाब कपड़ा-लत्ता इत्यादि जो

कुछ मेरे हाथ लगा उसी में उस तस्वीर वाली किताब को भी रखकर मैंने आग लगा दी, मगर अब मुझे यह जानकर अफसोस होता है कि वह किताब बड़े मतलब की थी।

अब भूतनाथ को निश्चय हो गया कि राजा गोपालसिंह मुझसे बहाना करते हैं और मेरी मदद करना नहीं चाहते। तब क्या करना चाहिए इसके लिए भूतनाथ सिर झुकाए हुए कुछ सोच रहा था कि राजा गोपालसिंह ने कहा -

गोपाल - मगर भूतनाथ मुझे याद पड़ता है कि तस्वीर वाली किताब में तुम्हारी तस्वीर भी थी!

भूत - शायद हो।

गोपाल - खैर अब तो वह किताब ही जल गई, उसके बारे में कुछ भी कहना वृथा है।

भूत - (उदासी के साथ) मेरी किस्मत, मैं लाचार हूं। बस मदद के लिए केवल एक ही किताब थी जिसे पाने की उम्मीद में मैं आपके पास आया था, खैर अब जाता हूं, जो कुछ हैरानी बदी है उसे उठाऊंगा और जिस तरह बनेगा असल बलभद्रसिंह का पता लगाऊंगा।

गोपाल - मैं जानता हूं कि इस समय जमानिया के बाहर होकर तुम कहां जाओगे और बलभद्रसिंह का पता क्योंकर लगाओंगे, क्या करोगे!

भूत - (ताज्जुब से) वह क्या?

गोपाल - बस काशी में मनोरमा का मकान तुम्हारा सबसे पहिला ठिकाना होगा।

भूत - बस-बस ठीक है, आपने खूब समझा और अब मुझे विश्वास हो गया कि इस काम में आप मेरी बहुत कुछ मदद कर सकते हैं मगर आश्चर्य है कि आप किसी तरह की सहायता नहीं करते।

गोपाल - खैर अब हम तुमसे साफ-साफ कह देना ही अच्छा समझते हैं। कृष्णा जिन्न से और मुझसे निःसन्देह दोस्ती थी और वह अब भी मुझसे प्रेम रखता है। मगर किसी कारण से मेरी तबियत उससे खट्टी हो गई और मैं कसम खा चुका हूं कि जिस काम में वह पड़ेगा उसमें मैं दखल न दूंगा चाहे वह काम मेरे ही फायदे का क्यों न हो या मदद न देने के सबब से मेरा कितना ही बड़ा नुकसान क्यों न हो या मेरी जान ही क्यों न चली जाये। बस यही सबब है कि मैं तुम्हारी मदद नहीं करता।

भूत - (कुछ सोचकर) अच्छा तो फिर मुझे आज्ञा दीजिये कि मैं जाऊं और बलभद्रसिंह का पता लगाने के लिए उद्योग करूं।

गोपाल - जाओ, ईश्वर तुम्हारी मदद करे।

भूतनाथ सलाम करके कमरे के बाहर चला गया। उसके जाने के बाद गोपालसिंह को हंसी आई और उन्होंने आप ही आप धीरे से कहा, "इसने जरूर सोचा होगा कि गोपालसिंह पूरा बेवकूफ या पागल है!"

भूतनाथ महल की ड्योढ़ी पर आया जहां अपने साथी को छोड़ गया था और उसे साथ लेकर शहर के बाहर निकल गया। जब वे दोनों आदमी मैदान में पहुंचे जहां चारों तरफ सन्नाटा था तो भूतनाथ के साथी ने पूछा, "कहिये राजा गोपालसिंह की मुलाकात का क्या नतीजा निकला?'

भूत - कुछ भी नहीं, मैं व्यर्थ ही आया।

आदमी - सो क्या?

भूत - उन्होंने किसी प्रकार की मदद देने से इनकार किया।

आदमी - बड़े आश्चर्य की बात है, यह काम तो वास्तव में उन्हीं का है।

भूत - सब-कुछ है मगर...।

आदमी - तो क्या लक्ष्मीदेवी का पता लगने से खुश नहीं हैं?

भूत - मेरी समझ में कुछ नहीं आता कि वे खुश हैं या नाराज, न तो उनके चेहरे पर किसी तरह की खुशी दिखाई दी, न रंज। हंसना तो दूर रहा वे लक्ष्मीदेवी, बलभद्रसिंह, मायारानी और कृष्णा जिन्न का किस्सा सुनकर मुस्कुराये भी नहीं, यद्यपि कई बातें ऐसी थीं जिन्हें सुनकर उन्हें अवश्य हंसना चाहिए था।

आदमी - क्या उनके मिजाज में कुछ फर्क पड़ गया है!

भूत - मालूम तो ऐसा ही होता है, बल्कि मैं समझता हूं कि वे पागल हो गये हैं। जब मैंने उनसे पूछा कि "राजा वीरेन्द्रसिंह या लक्ष्मीदेवी से मिलने के लिए आप रोहतासगढ़ जायेंगे?' तो उन्होंने कहा, "नहीं, जब तक राजा वीरेन्द्रसिंह न बुलावेंगे मैं न जाऊंगा।" भला यह भी कोई बुद्धिमानी की बात है!

आदमी - मालूम होता है, वे सनक गये हैं।

भूत - या तो वे सनक ही गये हैं और या फिर कोई भारी धूर्तता करना चाहते हैं। खैर जाने दो, इस समय तो भूतनाथ स्वतन्त्र है फिर जो होगा देखा जायगा। अब मुझे किसी ठिकाने बैठकर अपने आदमियों का इन्तजार करना चाहिए।

आदमी - तब उसी कुटी में चलिए, किसी न किसी से मुलाकात हो ही जायगी।

भूत - (हंसकर) अच्छा देखो तो सही भूतनाथ क्या-क्या करता है और कैसे-कैसे खेल-तमाशे दिखाता है।

बयान - 7

अब हम थोड़ा-सा हाल लक्ष्मीदेवी की शादी का लिखना आवश्यक समझते हैं।

जब लक्ष्मीदेवी की मां जहरीली मिठाई के असर से मर गई (जैसा कि ऊपर के लेख से हमारे पाठकों को मालूम हुआ होगा) तब लक्ष्मीदेवी की सगी मौसी जो विधवा थी और अपने ससुराल में रहा करती थी, बुला ली गई और उसने बड़े लाड़-प्यार से लक्ष्मीदेवी, कमलिनी और लाडिली की परवरिश शुरू की और बड़ी दिलजमई तथा दिल से उन तीनों को रखा। परन्तु बलभद्रसिंह स्त्री के मरने से बहुत ही उदास और विरक्त हो गया। उसका दिल गृहस्थी तथा व्यापार की तरफ नहीं लगता था और वह दिन-रात इसी विचार में पड़ा रहता था कि किसी तरह तीनों लड़कियों की शादी हो जाये और वे सब अपने-अपने ठिकाने पहुंच जायें तो उत्तम हो। लक्ष्मीदेवी की बातचीत तो राजा गोपालसिंह के साथ तै हो चुकी थी परन्तु कमलिनी और लाडिली के विषय में अभी कुछ निश्चय नहीं हो पाया था।

लक्ष्मीदेवी की मां को मरे जब लगभग सोलह महीने हो चुके तब उसकी शादी का इन्तजाम होने लगा। उधर राजा गोपालसिंह और इधर बलभद्रसिंह तैयारी करने लगे। यह बात पहिले ही से तै पा चुकी थी कि राजा गोपालसिंह बारात सजाकर बलभद्रसिंह के घर न आवेंगे बल्कि बलभद्रसिंह को अपनी लड़की उनके घर ले जाकर ब्याह देनी होगी और आखिर ऐसा ही हुआ।

सावन का महीना और कृष्णपक्ष की एकादशी का दिन था जब बलभद्रसिंह अपनी लड़की को लेकर जमानिया पहुंचे। उसके दूसरे या तीसरे दिन शादी होने वाली थी और उधर कम्बख्त दारोगा ने गुप्त रीति से हेलासिंह और उसकी लड़की मुन्दर को

बुलाकर अपने मकान में छिपा रखा था। बलभद्रसिंह और दारोगा में गहरी दोस्ती थी और बलभद्रसिंह दारोगा का बड़ा विश्वास करता था। मगर अफसोस, रुपया जो चाहे सो करावे, इसकी ठण्डी आंच को बरदाश्त करना किसी ऐसे-वैसे दिल का काम नहीं। इसके सबब से बड़े-बड़े मजबूत कलेजे हिल जाते हैं और पाप और पुण्य के विचार को तो यह इसी तरह से उड़ा देता है जैसे गन्धक का धुआं कनेर पुष्प के लाल रंग को। यद्यपि दारोगा और बलभद्रसिंह में दोस्ती थी परन्तु हेलासिंह के दिखाए हुए सब्जबाग ने दारोगा को ईश्वर और धर्म की तरफ कुछ भी विचार करने न दिया और वह बड़ी दृढ़ता के साथ विश्वासघात करने के लिए तैयार हो गया।

बलभद्रसिंह अपनी लड़की तथा कई नौकर और सिपाहियों को लेकर जमानिया पहुंचे और एक किराए के बाग में डेरा डाला जो कि दारोगा ने उनके लिए पहिले ही से ठीक कर रक्खा था। जब हर तरह का सामान ठीक हो गया तो उन्होंने दोस्ती के ढंग पर दारोगा को अपने पास बुलाया और उन चीजों को दिखाया जो शादी के लिए बन्दोबस्त कर अपने साथ ले आए थे, उन कपड़ों और गहनों को भी दिखाया जो अपने दामाद को देने के लिए लाए थे, फिहरिस्त के सहित वे चीजें उसके सामने रक्खीं जो दहेज में देने के लिए थीं, और सबके अन्त में वे कपड़े भी दिखाए जो शादी के समय अपनी लड़की लक्ष्मीदेवी को पहिराने के लिए तैयार कराकर लाए थे। दारोगा ने दोस्ताने ढंग पर एक-एक करके सब चीजों को देखा और तारीफ करता गया मगर सबसे ज्यादे देर तक जिन चीजों पर उसकी निगाह ठहरी वह शादी के समय पहिराए जाने वाले लक्ष्मीदेवी के कपड़े थे। दारोगा ने कपड़ों को उससे भी ज्यादे बारीक निगाह से देखा जिस निगाह से कि रेहन रखने वाला कोई चालाक बनिया उन्हें देखता या जांच करता।

दारोगा अकेला बलभद्रसिंह के पास नहीं आया था बल्कि अपने दो नौकरों तथा सिपाहियों के साथ जिनको वह दरवाजे पर ही छोड़ आया था, और भी दो आदमियों को लाया था जिन्हें बलभद्रसिंह नहीं पहिचानते थे और दारोगा ने जिन्हें अपना दोस्त कहकर परिचय दिया था। इस समय इन दोनों ने उन कपड़ों को अच्छी तरह देखा जिनके देखने में दारोगा ने अपने समय का बहुत हिस्सा नष्ट किया था।

थोड़ी ही देर तक गपशप और तारीफ करने के बाद दारोगा उठकर अपने घर चला आया। यहां उसने सब हाल हेलासिंह से कहा और यह कहा कि, "मैं दो चालाक दर्जियों को अपने साथ लिए गया था जिन्होंने वे कपड़े बहुत अच्छी तरह देखभाल

लिए हैं जो लक्ष्मीदेवी को विवाह के समय पहिराए जाने वाले हैं और उन दर्जियों को ठीक उसी तरह के कपड़े तैयार करने के लिए आज्ञा दे दी गई है, इत्यादि।

जिस दिन शादी होने वाली थी, केवल रात ही अंधेरी न थी बल्कि बादल भी चारों तरफ से इतने घिर आए थे कि हाथ को हाथ भी नहीं दिखाई देता था। ब्याह का काम उसी खास बाग में ठीक किया गया था जिसमें मायारानी के रहने का हाल हम कई मर्तबे लिख चुके हैं। इस समय इस बाग का बहुत बड़ा हिस्सा दारोगा ने शादी का सामान वगैरह रखने के लिए अपने कब्जे में कर लिया था। जिसमें कई दालान, कोठरियां, कमरे और तहखाने भी थे और साथ-साथ उसने हेलासिंह की लड़की मुन्दर को भी लौंडियों के से कपड़े पहना के अन्दर एक तहखाने में छिपा रक्खा था।

कन्यादान का समय तीन पहर रात बीते पण्डितों ने निश्चय किया था और जो पण्डित विवाह कराने वालों का मुखिया था उसे दारोगा ने पहिले ही मिला लिया था। दो पहर रात बीतने के पहिले ही लक्ष्मीदेवी को साथ लिए हुए बलभद्रसिंह बाग के अन्दर कर लिए गए और विवाह का कार्य आरम्भ कर दिया गया। बाग का जो हिस्सा दारोगा ने अपने अधिकार में रक्खा उसमें एक सुन्दर सजी हुई कोठरी भी थी जिसके नीचे एक तहखाना था। दारोगा की इच्छा से गोपालसिंह के कुलदेवता का स्थान उसी में नियत किया गया था और उसके नीचे वाले तहखाने में दारोगा ने हेलासिंह की लड़की मुन्दर को ठीक वैसे ही कपड़े पहिराकर छिपा रक्खा था जैसे कि बलभद्रसिंह ने लक्ष्मीदेवी के लिए बनवाये थे और जिन्हें चालाक दर्जियों के सहित दारोगा अच्छी तरह देख आया था।

बलभद्रसिंह का दोस्त केवल दारोगा ही न था बल्कि दारोगा के गुरुभाई इन्द्रदेव से भी उनकी मित्रता थी और उन्हें निश्चय था कि इस विवाह में इन्द्रदेव भी अवश्य आवेगा क्योंकि राजा गोपालसिंह भी इन्द्रदेव को मानते और उसकी इज्जत करते थे, परन्तु बलभद्रसिंह को बड़ा ही आश्चर्य हुआ जब विवाह का समय निकट आ जाने पर भी उन्होंने इन्द्रदेव को वहां न देखा। जब उसने दारोगा से पूछा तो दारोगा ने इन्द्रदेव की चीठी दिखाई जिसमें यह लिखा था कि, "मैं बीमार हूं इसलिए विवाह में उपस्थित नहीं हो सकता और इसलिए आपसे तथा राजा साहब से क्षमा मांगता हूं।"

जब कन्यादान हो गया तो पण्डित की आज्ञानुसार लक्ष्मीदेवी को लिये हुए राजा गोपालसिंह उस कोठरी में आए जहां कुलदेवता का स्थान बनाया गया था और वहां भी पण्डित ने कई तरह की पूजा कराई। इसके बाद पण्डित की आज्ञानुसार लक्ष्मीदेवी को छोड़ गोपालसिंह उस कोठरी से बाहर आए और वे लौंडियां भी बाहर

कर दी गईं जो लक्ष्मीदेवी के साथ थीं। उस समय पानी बड़े जोर से बरसने लगा और हवा बड़ी तेज चलने लगी, इस सबब से जितने आदमी वहां थे सब तितर-बितर हो गए और जिसको जहां जगह मिली वहां जा घुसा। दारोगा तथा पण्डित की आज्ञानुसार बलभद्रसिंह पालकी में सवार हो अपने डेरे की तरफ रवाना हो गए, इधर गोपालसिंह दूसरे कमरे में जाकर गद्दी पर बैठ रहे और रंडियों का नाच शुरू हुआ। जितने आदमी उस बाग में थे उसी महफिल की तरफ जा पहुंचे और नाच देखने लगे और इस सबब से दारोगा को भी अपना काम करने का बहुत अच्छा मौका मिल गया। वह उस कोठरी में घुसा जिसमें लक्ष्मीदेवी थी। उसे पूजा कराने के बहाने से तहखाने के अन्दर ले गया और तहखाने में से मुन्दर को लाकर लक्ष्मीदेवी की जगह बैठा दिया। उस समय लक्ष्मीदेवी को मालूम हुआ कि चालबाजी खेली गई और बदकिस्मती ने उसे घेर लिया। यद्यपि वह बहुत चिल्लाई और रोई मगर उसकी आवाज तहखाने और उसके ऊपर वाली कोठरी को भेदकर उन लोगों के कानों तक न पहुंच सकी जो कोठरी के बाहर दालान में पहरा दे रहे थे या महफिल में बैठे रंडी का नाच देख रहे थे। तहखाने के अन्दर से एक रास्ता बाग के बाहर निकल जाने का था जिसके खुले रहने का इन्तजाम दारोगा ने पहिले से कर रक्खा था और दारोगा के आदमी गुप्त रीति से बाहरी दरवाजे के आसपास मौजूद थे। दारोगा ने लक्ष्मीदेवी के मुंह में कपड़ा ठूंसकर उसे हर तरह से लाचार कर दिया और इस सुरंग की राह बाग के बाहर पहुंचा और अपने आदमियों के हवाले कर दरवाजा बन्द करते हुए लौट आया। घण्टे ही भर के बाद लक्ष्मीदेवी ने अपने को अजायबघर की किसी कोठरी में बन्द पाया और यह भी वहां उसके सुनने में आया कि बलभद्रसिंह पर, जो पानी बरसते में अपने डेरे की तरफ जा रहे थे डाकुओं ने छापा मारा और उन्हें गिरफ्तार कर ले गए। जब यह खबर राजा गोपालसिंह के कान में पहुंची तो महफिल बर्खास्त कर दी गई, अकेली लक्ष्मीदेवी (मुन्दर) महल के अन्दर पहुंचाई गई और राजा साहब की आज्ञानुसार सैकड़ों आदमी बलभद्रसिंह की खोज में रवाने हो गए। उस समय पानी का बरसना बन्द हो गया था और सुबह की सफेदी आसमान पर अपना दखल जमा चुकी थी। बलभद्रसिंह को खोजने के लिए राजा साहब के आदमियों ने दो दिन तक बहुत कुछ उद्योग किया मगर कुछ काम न चला अर्थात् बलभद्रसिंह का पता न लगा और पता लगता भी क्योंकर असल बात तो यह है कि बलभद्रसिंह भी दारोगा के कब्जे में पड़कर अजायबघर में पहुंच चुके थे।

बलभद्रसिंह पर डाका पड़ने और उनके गायब होने का हाल लेकर जब उनके आदमी लोग घर पर पहुंचे तो घर में हाहाकार मच गया। कमलिनी, लाडिली और उसकी मौसी रोते-रोते बेहाल थीं मगर क्या हो सकता था। अगर कुछ हो सकता था तो

केवल इतना ही कि थोड़े दिन में धीरे-धीरे गम कम होकर केवल सुनने-सुनाने के लिए रह जाता, और माया के फेर में पड़े हुए जीव अपने-अपने काम-धंधे में लग जाते। खैर इस पचड़े को छोड़कर हम बलभद्रसिंह और लक्ष्मीदेवी का हाल लिखते हैं जिससे हमारे किस्से का बड़ा भारी सम्बन्ध है।

दारोगा की यह नीयत नहीं थी कि लक्ष्मीदेवी और बलभद्रसिंह उसकी कैद में रहें बल्कि वह यह चाहता था कि महीना-बीस दिन बाद जब होहल्ला कम हो जाय और वे लोग अपने घर चले जायं जो विवाह के न्योते में आए हैं तो उन दोनों को मारकर टन्टा मिटा दिया जाए। परन्तु ईश्वर की मर्जी कुछ और ही थी। वह चाहता था कि लक्ष्मीदेवी और बलभद्रसिंह जिन्दा रहकर बड़े-बड़े कष्ट भोगें और मुद्दत तक मुर्दों से बदतर बने रहें क्योंकि थोड़े ही दिन बाद दारोगा की राय बदल गई और उसने लक्ष्मीदेवी और बलभद्रसिंह को हमेशा के लिए अपनी कैद में रखना उचित समझा। उसे निश्चय हो गया कि हेलासिंह बड़ा ही बदमाश और शैतान आदमी है और मुन्दर भी सीधी औरत नहीं है। अतएव आश्चर्य नहीं कि लक्ष्मीदेवी और बलभद्रसिंह के मरने के बाद वे दोनों बेफिक्र हो जायं और यह समझ लें कि अब दारोगा हमारा कुछ नहीं कर सकता, मुझे दूध की मक्खी की तरह निकाल बाहर करें तथा जो कुछ मुझे देने का वादा कर चुके हैं उसके बदले में अंगूठा दिखा दें। उसने सोचा कि यदि लक्ष्मीदेवी और बलभद्रसिंह हमारी कैद में बने रहेंगे तो हेलासिंह और मुन्दर भी कब्जे के बाहर न जा सकेंगे क्योंकि वे समझेंगे कि अगर दारोगा से बेमुरौवती की जाएगी तो वह तुरन्त बलभद्रसिंह और लक्ष्मीदेवी को प्रकट कर देगा और खुद राजा का खैरखाह बना रहेगा, उस समय लेने के देने पड़ जायेंगे, इत्यादि।

वास्तव में दारोगा का खयाल बहुत ठीक था। हेलासिंह यही चाहता था कि दारोगा किसी तरह लक्ष्मीदेवी और बलभद्रसिंह को खपा डाले तो हम लोग निश्चिन्त हो जायं मगर जब उसने देखा कि दारोगा ऐसा नहीं करेगा तो लाचार चुप हो रहा। दारोगा ने हेलासिंह के साथ ही साथ मुन्दर को भी यह कह रक्खा था कि, "देखो बलभद्रसिंह और लक्ष्मीदेवी मेरे कब्जे में हैं, जिस दिन तुम मुझसे बेमुरौवती करोगी या मेरे हुक्म से सिर फेरोगी उस दिन मैं लक्ष्मीदेवी और बलभद्रसिंह को प्रकट करके तुम दोनों को जहन्नुम में मिला दूंगा।"

निःसन्देह दोनों कैदियों को कैद रखकर दारोगा ने बहुत दिनों तक फायदा उठाया और मालामाल हो गया, मगर साथ ही इसके मुन्दर की शादी के महीने ही भर बाद दारोगा की चालाकियों ने और लोगों को यह भी विश्वास दिला दिया कि बलभद्रसिंह

डाकुओं के हाथ से मारा गया। यह खबर जब बलभद्रसिंह के घर में पहुंची तो उसकी साली और दोनों लड़कियों के रंज का हद न रहा। बरसों बीत जाने पर भी उनकी आंखें सदा तर रहा करती थीं, मगर मुन्दर जो लक्ष्मीदेवी के नाम से मशहूर हो रही थी लोगों को यह विश्वास दिलाने के लिए कि 'मैं वास्तव में कमलिनी और लाडिली की बहिन हूं' उन दोनों के पास हमेशा तोहफा और सौगात भेजा करती थी। और कमलिनी और लाडिली भी जो यद्यपि बिना मां-बाप की हो गई थीं परन्तु अपनी मौसी की बदौलत, जो उन दोनों को अपने से बढ़कर मानती थी और जिसे वे दोनों भी अपनी मां की तरह मानती थीं, बराबर सुख के साथ रहा करती थीं। मुन्दर की शादी के तीन वर्ष बाद कमलिनी और लाडिली की मौसी भी कुटिल काल के गाल में जा पड़ी। इसके थोड़े ही दिन बाद मुन्दर ने कमलिनी और लाडिली को अपने यहां बुला लिया और इस तरह खातिरदारी के साथ रक्खा कि उन दोनों के दिल में इस बात का शक तक न होने पाया कि मुन्दर वास्तव में हमारी बहिन लक्ष्मीदेवी नहीं है। यद्यपि लक्ष्मीदेवी की तरह मुन्दर भी बहुत खूबसूरत और हसीन थी मगर फिर भी सूरत-शक्ल में बहुत कुछ अन्दर था, लेकिन कमलिनी और लाडिली ने इसे जमाने का हेर-फेर समझा, जैसा कि हम ऊपर के किसी बयान में लिख आए हैं।

यह सब-कुछ हुआ मगर मुन्दर के दिल में जिसका नाम राजा गोपालसिंह की बदौलत मायारानी हो गया था, दारोगा का खौफ बना ही रहा और वह इस बात से डरती ही रही कि कहीं किसी दिन दारोगा मुझसे रंज होकर सारा भेद राजा गोपालसिंह के आगे खोल न दे। इस बला से बचने के लिए उसे इससे बढ़कर कोई तर्कीब न सूझी कि राजा गोपालसिंह को ही इस दुनिया से उठा दे और स्वयं राजरानी बनकर दारोगा पर हुकूमत करे। उसकी ऐयाशी ने उसके इस खयाल को और भी मजबूत कर दिया और यही वह जमाना था जबकि एक छोकरे पर जिसका परिचय धनपत के नाम से पहिले के बयानों में दिया जा चुका है, इसका दिल आ गया और उसके विचार की जड़ बड़ की तरह मजबूती पकड़ती चली गई थी। उधर दारोगा भी बेफिक्र न था, उसे भी अपना रंग चोखा करने की फिक्र लग रही थी। यद्यपि उसने लक्ष्मीदेवी और बलभद्रसिंह को एक ही कैदखाने में कैद किया हुआ था, मगर वह लक्ष्मीदेवी को भी धोखे में डालकर एक नया काम करने की फिक्र में पड़ा हुआ था और चाहता था कि बलभद्रसिंह को लक्ष्मीदेवी से इस ढंग पर अलग कर दे कि लक्ष्मीदेवी को किसी तरह का गुमान तक न होने पावे। इस काम में उसने एक दोस्त की मदद ली जिसका नाम जैपालसिंह था और जिसका हाल आगे चलकर मालूम होगा।

बयान - 8

हम ऊपर लिख आए हैं कि लक्ष्मीदेवी और बलभद्रसिंह अजायबघर के किसी तहखाने में कैद किए थे। मगर मायारानी और हेलासिंह इस बात को नहीं जानते थे कि उन दोनों को दारोगा ने कहां कैद कर रक्खा है।

इसके कहने-सुनने की कोई आवश्यकता नहीं कि बलभद्रसिंह और लक्ष्मीदेवी कैदखाने में क्योंकर मुसीबत के दिन काट रहे थे। ताज्जुब की बात तो यह थी कि दारोगा अक्सर इन दोनों के पास जाता और बलभद्रसिंह के ताने और गालियां बरदाश्त करता। मगर उसे किसी तरह की शर्म नहीं आती थी। जिस घर में वे दोनों कैद थे उसमें रात और दिन का विचार करना कठिन था। उन दोनों से थोड़ी ही दूर पर एक चिराग दिन-रात जला करता था जिसकी रोशनी में वे एक-दूसरे के उदास और रंजीदे चेहरे को बराबर देखा करते थे।

जिस कोठरी में वे दोनों कैद थे उसके आगे लोहे का जंगला लगा हुआ था तथा सामने की तरफ एक दालान और दाहिने तरफ एक कोठरी तथा बाईं तरफ ऊपर चढ़ जाने का रास्ता था। एक दिन आधी रात के समय एक खटके की आवाज सुनकर लक्ष्मीदेवी जो एक मामूली कम्बल पर सोई हुई थी उठ बैठी और सामने की तरफ देखने लगी। उसने देखा कि सामने में सीढ़ियां उतरकर चेहरे पर नकाब डाले हुए एक आदमी आ रहा है। जब लोहे वाले जंगले के पास पहुंचा तो उसकी तरफ देखने लगा कि दोनों कैदी सोये हुए हैं या जागते, मगर जब उसने लक्ष्मीदेवी को बैठे हुए पाया तो बोला, "बेटी, मुझे तुम दोनों की अवस्था पर बड़ा ही रंज होता है मगर क्या करूं लाचार हूं, अभी तक तो कोई मौका मेरे हाथ नहीं लगा, मगर फिर भी मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि किसी न किसी दिन तुम दोनों को मैं इस कैद से जरूर छुड़ाऊंगा। आज इस समय मैं केवल यह कहने के लिए आया हूं कि आज दारोगा ने बलभद्रसिंह को जो खाने की चीजें दी थीं उनमें जहर मिला हुआ था। अफसोस कि बेचारा बलभद्रसिंह उसे खा गया, ताज्जुब नहीं कि वह इस दुनिया से घंटे ही दो घंटे में कूच कर जाये, लेकिन यदि तू उसे जगा दे और जो कुछ मैं कहूं करे तो निःसन्देह उसकी जान बच जायेगी।"

बेचारी लक्ष्मीदेवी के लिए पहिले की मुसीबतें क्या कम थीं और इस खबर ने उसके दिल पर क्या असर किया सो वही जानती होगी। वह घबराई हुई अपने बाप के पास गई जो एक कम्बल पर सो रहा था। उसने उसे उठाने की कोशिश की मगर उसका बाप न उठा, तब उसने समझा कि बेशक जहर ने उसके बाप की जान ले ली, मगर

जब उसने नब्ज पर उंगली रक्खी तो नब्ज को तेजी के साथ चलता पाया। लक्ष्मीदेवी की आंखों से बेअन्दाज आंसू जारी हो गये। वह लपककर जंगले के पास आई और उस आदमी से हाथ जोड़कर बोली, "निःसन्देह तुम कोई देवता हो जो इस समय मेरी मदद के लिए आए हो! यद्यपि मैं यहां मुसीबत के दिन काट रही हूं मगर फिर भी अपने पिता को अपने पास देखकर मैं मुसीबत को कुछ नहीं गिनती थी, अफसोस, दारोगा मुझे इस सुख से भी दूर किया चाहता है। जो कुछ तुमने कहा सो बहुत ठीक है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि दारोगा ने मेरे बाप को जहर दे दिया, मगर मैं तुम्हारी दूसरी बात पर भी विश्वास करती हूं जो तुम अभी कह चुके हो कि यदि तुम्हारी बताई हुई तर्कीब की जायेगी तो इनकी जान बच जायगी।"

नकाबपोश - बेशक ऐसा ही है (एक पुड़िया जंगले के अन्दर फेंककर) यह दवा तुम उनके मुंह में डाल दो, घण्टे ही भर में जहर का असर दूर हो जायेगा और मैं प्रतिज्ञापूर्वक कहता हूं कि इस दवा की तासीर से भविष्य में इन पर किसी तरह के जहर का असर न होने पावेगा।

लक्ष्मीदेवी - अगर ऐसा हो तो क्या बात है!

नकाबपोश - बेशक ऐसा ही है, पर अब विलम्ब न करो और वह दवा शीघ्र अपने बाप के मुंह में डाल दो, लो अब मैं जाता हूं ज्यादे देर तक ठहर नहीं सकता।

इतना कहकर नकाबपोश चला गया और लक्ष्मीदेवी ने पुड़िया खोलकर अपने बाप के मुंह में वह दवा डाल दी।

इस जगह यह कह देना हम उचित समझते हैं कि यह नकाबपोश जो आया था दारोगा का वही मित्र जैपालसिंह था और इसे दारोगा ने अपनी इच्छानुसार खूब सिखा-पढ़ाकर भेजा था। वह अपने चेहरे और बदन को विशेष करके इसलिए ढांके हुए था कि उसका चेहरा और तमाम बदन गर्मी के जख्मों से गन्दा हो रहा था और उन्हीं जख्मों की बदौलत वह दारोगा का एक भारी काम निकालना चाहता था।

दवा देने के घण्टे भर बाद बलभद्रसिंह होश में आया। उस समय लक्ष्मीदेवी बहुत खुश हुई और उसने अपने बाप से मिजाज का हाल पूछा। बलभद्रसिंह ने कहा, "मैं नहीं जानता कि मुझे क्या हो गया था और अब मेरे बदन में चिनगारियां क्यों छूट रही हैं।" लक्ष्मीदेवी ने सब हाल कहा जिसे सुनकर बलभद्रसिंह बोला, "ठीक है, तुम्हारी खिलाई हुई दवा ने मेरी जान तो बचा ली परन्तु मैं देखता हूं कि जहर का असर मुझे साफ छोड़ा नहीं चाहता, निःसन्देह इसकी गर्मी मेरे तमाम बदन को

बिगाड़ देगी!" इतना कहकर बलभद्रसिंह चुप हो गया और गर्मी की बेचैनी से हाथ-पैर मारने लगा। सुबह होते-होते उसके तमाम बदन में फफोले निकल आये जिसकी तकलीफ से वह बहुत ही बेचैन हो गया। बेचारी लक्ष्मीदेवी उसके पास बैठकर सिवाय रोने के और कुछ भी नहीं कर सकती थी। दूसरे दिन जब दारोगा उस तहखाने में आया तो बलभद्रसिंह का हाल देखकर पहिले तो लौट गया मगर थोड़ी ही देर बाद पुनः दो आदमियों को साथ लेकर आया और बलभद्रसिंह को हाथों-हाथ उठवाकर तहखाने के बाहर ले गया। इसके बाद आठ-दस दिन तक बेचारी लक्ष्मीदेवी ने अपने बाप की सूरत नहीं देखी। नवें दिन कम्बख्त दारोगा ने बलभद्रसिंह की जगह अपने दोस्त जैपालसिंह को उस तहखाने में ला डाला और ताला बन्द करके चला गया। जैपालसिंह को देखकर लक्ष्मीदेवी ताज्जुब में आ गई और बोली, "तुम कौन हो और यहां पर क्यों लाये गये'

जैपाल - बेटी, क्या तू मुझे इसी आठ दिन में भूल गई। क्या तू नहीं जानती कि जहर के असर ने मेरी दुर्गति कर दी है क्या तेरे सामने ही मेरे तमाम बदन में फफोले नहीं उठ आये थे ठीक है, बेशक तू मुझे नहीं पहिचान सकी होगी, क्योंकि मेरा तमाम बदन जख्मों से भरा हुआ है, चेहरा बिगड़ गया है, मेरी आवाज खराब हो गई है, और मैं बहुत ही दुःखी हो रहा हूं!

लक्ष्मीदेवी को यद्यपि अपने बाप पर शक हुआ था मगर मोढ़े पर का वही दांत काटा निशान जो इस समय भी मौजूद था और जिसे दारोगा ने कारीगर जर्राह की बदौलत बनवा दिया था, देखकर चुप हो रही और निश्चय हो गया कि मेरा बाप बलभद्रसिंह यही है। थोड़ी देर बाद लक्ष्मीदेवी ने पूछा, "तुम्हें जब दारोगा यहां से ले गया तब उसने क्या किया?'

नकली बलभद्र - तीन दिन तक तो तनोबदन की सुध नहीं रही।

लक्ष्मी - अच्छा फिर।

नकली बलभद्र - चौथे दिन जब मेरी आंख खुली तो मैंने अपने को एक तहखाने में कैद पाया जहां सामने चिराग जल रहा था, कुर्सी पर बेईमान दारोगा बैठा हुआ था और एक जर्राह मेरे जख्मों पर मरहम लगा रहा था।

लक्ष्मी - आश्चर्य है कि जब दारोगा ने तुम्हारी जान लेने के लिए जहर ही दिया तो...।

नकली बलभद्र - मैं खुद आश्चर्य कर रहा हूं कि जब दारोगा मेरी जान ही लिया चाहता था और इसीलिए उसने मुझको जहर दिया था तो यहां से ले जाकर उसने मुझे जीता क्यों छोड़ा, मेरा सिर क्यों नहीं काट डाला, बल्कि मेरा इलाज क्यों कराने लगा?

लक्ष्मी - ठीक है, मैं भी यही सोच रही हूं, अच्छा तब क्या हुआ?

नकली बलभद्र - जब जर्राह मरहम लगाके चला गया और निराला हुआ तब दारोगा ने मुझसे कहा, "देखो बलभद्रसिंह, निःसन्देह तुम मेरे दोस्त थे मगर दौलत के लालच ने मुझे तुम्हारे साथ दुश्मनी करने पर मजबूर किया। जो कुछ मैं किया चाहता था सो मैं यद्यपि कर चुका अर्थात् तुम्हारी लड़की की जगह हेलासिंह की लड़की मुन्दर को राजरानी बना दिया मगर फिर मैंने सोचा कि अगर तुम दोनों बचकर निकल जाओगे तो मेरा भेद खुल जायगा और मैं मारा जाऊंगा इसलिए मैंने तुम दोनों को कैद किया। फिर हेलासिंह ने राय दी कि बलभद्रसिंह को मारकर सदैव के लिए टन्टा मिटा देना चाहिए और इसलिए मैंने तुमको जहर दिया मगर आश्चर्य है कि तुम मरे नहीं। जहां तक मैं समझता हूं मेरे किसी नौकर ने ही मेरे साथ दगा की अर्थात् मेरे दवा के सन्दूक में से संजीवनी की पुड़िया जो केवल एक ही खुराक थी और जिसे वर्षों मेहनत करके मैंने तैयार किया था, निकालकर तुम्हें खिला दी और तुम्हारी जान बच गई। बेशक यही बात है और यह शक मुझे तब हुआ जब मैंने अपने सन्दूक में संजीवनी की पुड़िया न पाई और यद्यपि तुम उस संजीवनी की बदौलत बच गये मगर फिर भी तेज जहर के असर से तुम्हारा बदन, तुम्हारी सूरत और तुम्हारी जिन्दगी खराब हुए बिना नहीं रह सकती। ताज्जुब नहीं कि आज नहीं तो दो-चार वर्षों के अन्दर तुम मर जाओ। अतएव मैं तुम्हें मारने के लिए कष्ट नहीं उठाता बल्कि तुम्हारे इन जख्मों का आराम करने का उद्योग करता हूं और इसमें अपना फायदा भी समझता हूं।" इतना कह दारोगा चला गया और मुझे कई दिनों तक उसी तहखाने में रहना पड़ा। इस बीच में जर्राह दिन में तीन-चार दफे मेरे पास आता और जख्मों को साफ करके पट्टी लगा जाता। जब मेरे जख्म दुरुस्त होने पर आये और जर्राह ने कहा कि अब पट्टी बदलने की जरूरत नहीं पड़ेगी तब मैं पुनः इस जगह पहुंचा दिया गया।

लक्ष्मी - (ऊंची सांस लेकर) न मालूम हम लोगों ने ऐसे कौन-से पाप किए हैं जिनका फल यह मिल रहा है।

इतना कह लक्ष्मीदेवी रोने लगी और नकली बलभद्रसिंह उसको दम-दिलासा देकर समझाने लगा।

हमारे पाठक आश्चर्य करते होंगे कि दारोगा ने ऐसा क्यों किया और उसे एक नकली बलभद्रसिंह बनाने की क्या आवश्यकता थी। अस्तु इसका सबब भी इसी जगह लिख देना हम उचित समझते हैं।

कम्बख्त दारोगा ने सोचा कि लक्ष्मीदेवी की जगह में मुन्दर को राजरानी बना दिया मगर कहीं ऐसा न हो कि दो-चार वर्ष के बाद या किसी समय में लक्ष्मीदेवी के रिश्तेदारी में कोई या उसकी दोनों बहिनें मुन्दर से मिलने आवें और लक्ष्मीदेवी के लड़कपन का जिक्र छेड़ दें तो अगर उस समय मुन्दर उसका जवाब न दे सकी तो उनको शक हो जायेगा। सूरत-शक्ल के बारे में तो कुछ चिन्ता नहीं, जैसी लक्ष्मीदेवी खूबसूरत है वैसी ही मुन्दर भी है और औरतों की सूरत-शक्ल प्रायः विवाह होने के बाद शीघ्र ही बदल जाती है। अस्तु सूरत-शक्ल के बारे में कोई कुछ कह नहीं सकेगा, परन्तु जब पुरानी बातें निकलेंगी और मुन्दर कुछ जवाब न दे सकेगी तब कठिन होगा। अतएव लक्ष्मीदेवी का कुछ हाल, उसके लड़कपन की कैफियत, उसके रिश्तेदारों और सखी-सहेलियों के नाम और उनकी तथा उनके घरों की व्यवस्था की मुन्दर को पूरी तरह जानकारी हो जानी चाहिए। अगर वह सब हाल हम बलभद्रसिंह से पूछेंगे तो वह कदापि न बतायेगा, हां अगर किसी दूसरे आदमी को बलभद्रसिंह बनाया जाये और वह कुछ दिनों तक लक्ष्मीदेवी के साथ रहकर इन बातों का पता लगावे तब चल सकता है, इत्यादि बातों को सोचकर ही दारोगा ने उपरोक्त चालाकी की और कृतकार्य भी हुआ अर्थात् दो ही चार महीने में नकली बलभद्रसिंह को लक्ष्मीदेवी का पूरा-पूरा हाल मालूम हो गया। उसने सब हाल दारोगा से कहा और दारोगा ने मुन्दर को सिखा-पढ़ा दिया।

जब इन बातों से दारोगा की दिलजमई हो गई तो उसने नकली बलभद्रसिंह को कैदखाने से बाहर कर दिया और फिर मुद्दत तक लक्ष्मीदेवी को अकेले ही कैद की तकलीफ उठानी पड़ी।

बयान - 9

एक दिन लक्ष्मीदेवी उस कैदखाने में बैठी हुई अपनी किस्मत पर रो रही थी कि दाहिनी तरफ वाली कोठरी में से एक नकाबपोश को निकलते देखा। लक्ष्मीदेवी ने समझा कि यह वही नकाबपोश है जिसने मेरे बाप की जान बचाई थी मगर तुरन्त ही

उसे मालूम हो गया कि यह कोई दूसरा है क्योंकि उसके और इसके डील-डौल में बहुत फर्क था। जब नकाबपोश जंगले के पास आया तब लक्ष्मीदेवी ने पूछा, "तुम कौन हो और यहां क्यों आये हो?'

नकाबपोश - मैं अपना परिचय तो नहीं दे सकता परन्तु इतना कह सकता हूं कि बहुत दिनों से मैं इस फिक्र में था कि इस कैदखाने से किसी तरह तुमको निकाल दूं मगर मौका न मिल सका, आज उसका मौका मिलने पर यहां आया हूं, बस विलम्ब न करो और उठो।

इतना कहकर नकाबपोश ने जंगला खोल दिया।

लक्ष्मीदेवी - और मेरे पिता?

नकाबपोश - मुझे मालूम नहीं कि वे कहां कैद हैं या किस अवस्था में हैं, यदि मुझे उनका पता लग जायगा तो मैं उन्हें भी छुड़ाऊंगा।

यह सुनकर लक्ष्मीदेवी चुप हो रही और कुछ सोच-विचारकर आंखों से आंसू टपकाती हुई जंगले के बाहर निकली। नकाबपोश उसे साथ लिए हुये उसी कोठरी में घुसा जिसमें से स्वयं आया था। अब लक्ष्मीदेवी को मालूम हुआ कि यह एक सुरंग का मुहारा है। बहुत दूर तक नकाबपोश के पीछे जा और कई दरवाजे लांघकर उसे आसमान दिखाई दिया और मैदान की ताजी हवा भी मयस्सर हुई। उस समय नकाबपोश ने पूछा, "कहो अब तुम क्या करोगी और कहां जाओगी?'

लक्ष्मी - मैं नहीं कह सकती कि कहां जाऊंगी और क्या करूंगी बल्कि डरती हूं कि कहीं फिर दारोगा के कब्जे में न पड़ जाऊं, हां यदि तुम मेरे साथ कुछ और भी नेकी करो और मुझे मेरे घर तक पहुंचाने का बन्दोबस्त कर दो तो अच्छा हो।

नकाबपोश - (ऊंची सांस लेकर) अफसोस, तुम्हारा घर बर्बाद हो गया और इस समय वहां कोई नहीं है। तुम्हारी दूसरी मां अर्थात् तुम्हारी मौसी मर गई, तुम्हारी दोनों छोटी बहिनें राजा गोपालसिंह के यहां आ पहुंची हैं और मायारानी को जो तुम्हारे बदले में गोपालसिंह के गले मढ़ी गई है, अपनी सगी बहिन समझकर उसी के साथ रहती हैं।

लक्ष्मी - मैंने तो सुना था कि मेरे बदले में मुन्दर मायारानी बनाई गई है?

नकाब - हां वही मुन्दर अब मायारानी के नाम से प्रसिद्ध हो रही है।

लक्ष्मी - तो क्या मैं अपनी बहिनों से या राजा गोपालसिंह से मिल सकती हूं?

नकाब - नहीं।

लक्ष्मी - क्यों?

नकाब - इसलिए कि अभी महीना भर भी नहीं हुआ कि राजा गोपालसिंह का भी इन्तकाल हो गया। अब तुम्हारी फरियाद सुनने वाला वहां कोई भी नहीं है और यदि तुम वहां जाओगी और मायारानी को कुछ मालूम हो जायगा तो तुम्हारी जान कदापि न बचेगी।

इतना सुनकर लक्ष्मीदेवी अपनी बदकिस्मती पर रोने लगी और नकाबपोश उसे समझाने-बुझाने लगा। अन्त में लक्ष्मीदेवी ने कहा, "अच्छा फिर तुम्हीं बताओ कि मैं कहां जाऊं और क्या करूं?'

नकाब - (कुछ सोचकर) तो तुम मेरे ही घर चलो, मैं तुम्हें अपनी ही बेटी समझूंगा और परवरिश करूंगा।

लक्ष्मी - मगर तुम तो अपना परिचय तक नहीं देते!

नकाब - (ऊंची सांस लेकर) खैर अब तो परिचय देना ही पड़ा और कहना ही पड़ा कि मैं तुम्हारे बाप का दोस्त 'इन्द्रदेव' हूं।

इतना कहकर नकाबपोश ने चेहरे से नकाब उतारी और पूर्ण चन्द्रमा की रोशनी ने उसके चेहरे के हर एक रग-रेशे को अच्छी तरह दिखा दिया। लक्ष्मीदेवी उसे देखते ही पहिचान गई और दौड़कर उसके पैरों पर गिर पड़ी। इन्द्रदेव ने उठाकर उसका सिर छाती से लगा लिया और तब उसे अपने घर ले आकर गुप्त रीति से बड़ी खातिरदारी के साथ अपने यहां रक्खा।

लक्ष्मीदेवी का दिल फोड़े की तरह पका हुआ था। वह अपनी नई जिन्दगी में तरह-तरह की तकलीफें उठा चुकी थी। अब भी वह अपने बाप को खोज निकालने की फिक्र में लगी हुई थी और इसके अतिरिक्त उसका ज्यादा खयाल इस बात पर था कि किसी तरह अपने दुश्मनों से बदला लेना चाहिए। इस विषय पर उसने बहुत कुछ विचार किया और अन्त में यह निश्चय किया कि इन्द्रदेव से ऐयारी सीखनी चाहिए क्योंकि वह खूब जानती थी कि इन्द्रदेव ऐयारी के फन में बड़ा ही होशियार है। आखिर उसने अपने दिल का हाल इन्द्रदेव से कहा और इन्द्रवेद ने भी उसकी राय

पसन्द की तथा दिलोजान से कोशिश करके उसे ऐयारी सिखाने लगा। यद्यपि वह दरोगा का गुरुभाई था तथापि दारोगा की करतूतों ने उसे हद से ज्यादा रंजीदा कर दिया था और उसे इस बात की कुछ भी परवाह न थी कि लक्ष्मीदेवी ऐयारी के फन में होशियार होकर दारोगा से बदला लेगी। निःसन्देह इन्द्रदेव ने बड़ी मुस्तैदी के साथ लक्ष्मीदेवी को ऐयारी की विद्या सिखाई, बड़े-बड़े ऐयारों के किस्से सुनाये, एक से एक बढ़े-चढ़े नुस्खे सिखलाये, और ऐयारी के गूढ़ तत्त्वों को उसके दिल में नुक्श (अंकित) कर दिया। थोड़े ही दिनों में लक्ष्मीदेवी पूरी ऐयारा हो गई और इन्द्रदेव की मदद से अपना नाम तारा रखकर मैदान की हवा खाने और दुश्मनों से बदला लेने की फिक्र में घूमने लगी।

लक्ष्मीदेवी ने तारा बनकर जो काम किया सबमें इन्द्रदेव की राय लेती रही और इन्द्रदेव भी बराबर उसकी मदद और खबरदारी करते रहे।

यद्यपि इन्द्रदेव ने लक्ष्मीदेवी की जान बचाई, उसे अपनी लड़की के समान पालकर सब लायक किया, और बहुत दिनों तक अपने साथ रक्खा मगर उनके दो-एक सच्चे प्रेमियों के सिवाय लक्ष्मीदेवी का हाल और किसी को मालूम न हुआ और इन्द्रदेव ने भी किसी को उसकी सूरत तक देखने न दी। इस बीच में पचीसों दफे कम्बख्त दारोगा इन्द्रदेव के घर गया और इन्द्रदेव ने भी अपने दिल का भाव छिपाकर हर तरह से उसकी खातिरदारी की मगर दारोगा तक को इस बात का पता न लगा कि जिस लक्ष्मीदेवी को मैंने कैद किया था वह इन्द्रदेव के घर में मौजूद है और इस लायक हो रही है कि कुछ दिनों के बाद हमीं लोगों से बदला ले।

लक्ष्मीदेवी का तारा नाम इन्द्रदेव ही ने रक्खा था। जब तारा हर तरह से होशियार हो गई और वर्षों की मेहनत से उसकी सूरत-शक्ल में भी बहुत बड़ा फर्क पड़ गया तब इन्द्रदेव ने उसे आज्ञा दी कि तू मायारानी के घर जाकर अपनी बहिन कमलिनी से मिल जो बहुत ही नेक और सच्ची है, मगर अपना असली परिचय न देकर उसके साथ मोहब्बत पैदा कर और ऐसा उद्योग कर कि उसमें और मायारानी में लड़ाई हो जाय और वह उस घर से निकलकर अलग हो जाय, फिर जो कुछ होगा देखा जायगा। केवल इतना ही नहीं, इन्द्रदेव ने उसे एक प्रशंसापत्र भी दिया हुआ था -

"मैं तारा को अच्छी तरह जानत हूं। यह मेरी धर्म की लड़की है। इसका चालचलन बहुत ही अच्छा है और नेक तथा धार्मिक लोगों के लिये यह विश्वास करने योग्य है।"

इन्द्रदेव ने तारा को यह भी कह दिया था कि मेरा यह पत्र सिवाय कमलिनी के और किसी को न दिखाइयो और जब इस बात का निश्चय हो जाये कि वह तुझ पर मुहब्बत रखती है तब उसको एक दफे किसी तरह से मेरे घर ले आइयो, फिर जैसा होगा मैं समझ लूंगा।

आखिर ऐसा ही हुआ अर्थात् तारा इन्द्रदेव के बल पर निडर होकर मायारानी के महल में चली गई और कमलिनी की नौकरी कर ली। उसे पहिचानना तो दूर रहा किसी को इस बात का शक भी न हुआ कि यह लक्ष्मीदेवी है।

तीन महीने के अन्दर उसने कमलिनी को अपने ऊपर मोहित कर लिया और मायारानी के इतने ऐब दिखाए कि कमलिनी को एक सायत के लिए भी मायारानी के पास रहना कठिन हो गया। जब उसने अपने बारे में तारा से राय ली तब तारा ने उसे इन्द्रदेव से मिलने के लिए कहा और इस बारे में बहुत जोर दिया। कमलिनी ने तारा की बात मान ली और तारा उसे इन्द्रदेव के पास ले आई। इन्द्रदेव ने कमलिनी की बड़ी खातिर की और जहां तक बन पड़ा उसे उभाड़कर खुद इस बात की प्रतिज्ञा की कि, 'यदि तू मेरा भेद गुप्त रक्खेगी तो मैं बराबर तेरी मदद करता रहूंगा।'

उन दिनों तालाब के बीच वाला तिलिस्मी मकान बिल्कुल उजाड़ पड़ा हुआ था और सिवाय इन्द्रदेव के उसका भेद किसी को मालूम न था। इन्द्रदेव ही के बताने से कमलिनी ने उस मकान में अपना डेरा डाला और हर तरह से निडर होकर वहां रहने लगी और इसके बाद जो कुछ हुआ हमारे प्रेमी पाठकों को मालूम ही है या हो जायगा।

बयान - 10

भूतनाथ जब राजा गोपालसिंह से बिदा हुआ तो अपने शागिर्द को साथ लिए हुए शहर से बाहर निकला और बातचीत करता हुआ आधी रात जाते-जाते तक एक घने जंगल के बीचोंबीच में पहुंचा जहां एक साधारण ढंग की कुटी बनी हुई थी और उसके दरवाजे पर दो आदमी भी बैठे हुए धीरे-धीरे बातचीत कर रहे थे। वे दोनों भूतनाथ को देखते ही उठ खड़े हुए और सलाम करके बोले -

एक - क्या राजा गोपालसिंह से आपका कुछ काम निकला?

भूत - कुछ भी नहीं।

दूसरा - (आश्चर्य से) सो क्यों?

भूत - ठहरो, जरा दम ले लूं तो कहूं - और सब लोग कहां गये हैं?

एक - घूमने-फिरने गये हैं, आते ही होंगे।

भूत - अच्छा कुछ खाने-पीने के लिए हो तो लाओ।

इतना सुनते ही एक आदमी कुटी के अन्दर चला गया और एक लम्बा-चौड़ा कम्बल ला कुटी के बाहर बिछाकर फिर अन्दर लौट गया। भूतनाथ उसी कम्बल पर बैठ गया। दूसरा आदमी कुछ खाने की चीजें और जल से भरा हुआ लोटा ले आया और उस आदमी को जो भूतनाथ के साथ ही साथ यहां तक आया था इशारा करके कुटी के अन्दर ले गया। भूतनाथ खा-पीकर निश्चिन्त हुआ ही था कि उसके बाकी आदमी भी जो इधर-उधर घूमने के लिए गये थे आ पहुंचे और भूतनाथ को सलाम करने के बाद इशारा पाकर उसके सामने बैठकर बातचीत करने लगे। इस जगह यह लिखने की कोई जरूरत नहीं कि इन लोगों में क्या-क्या बातें हुईं। रात भर सलाह और बातचीत करने के बाद भूतनाथ उन लोगों को समझा-बुझा और कई काम करने के लिए ताकीद करके सबेरा होते-होते अकेला वहां से रवाना हो गया और इन्द्रदेव के मकान की तरफ चल निकला।

दोपहर से कुछ ज्यादा दिन ढल चुका था जब भूतनाथ इन्द्रदेव की पहाड़ी पर आ पहुंचा और उस खोह के बाहर खड़ा होकर जो इन्द्रदेव के मकान में जाने का दरवाजा था इधर-उधर देखने लगा। किसी को न देखा तो एक पत्थर की चट्टान पर बैठ गया क्योंकि वह इन्द्रदेव के मकान में पहुंचने का रास्त नहीं जानता था, हां यह बात उसे जरूर मालूम थी कि इन्द्रदेव की आज्ञा बिना या जब तक इन्द्रदेव का कोई आदमी अपने साथ न ले जाये कोई उस सुरंग को पार करके इन्द्रदेव के पास नहीं पहुंच सकता। इसके पहिले भी इन्द्रदेव के पास जाने का भूतनाथ को मौका मिला था मगर हर दफे इन्द्रदेव का आदमी भूतनाथ की आंखों पर पट्टी बांधकर ही उसे खोह के अन्दर ले गया था।

भूतनाथ घण्टे भर तक उसी चट्टान पर बैठा रहा, इसके बाद इन्द्रदेव का एक आदमी खोह के बाहर निकला जो भूतनाथ को अच्छी तरह पहिचानता था और भूतनाथ भी उसे जानता था। उस आदमी ने साहब-सलामत करने के बाद भूतनाथ से पूछा, "कहिए आप कहां से आये?'

भूत - आपके मालिक इन्द्रदेव से मिलने के लिए आया हूं और बड़ी देर से यहां बैठा हूं।

आदमी - तो क्या आपकी इत्तिला करनी होगी?

भूत - अवश्य।

आदमी - अच्छा तो आप थोड़ी देर तक और तकलीफ कीजिए, मैं अभी जाकर खबर करता हूं।

इतना कहकर वह आदमी लौट गया। एक घण्टे के बाद वह और भी दो आदमियों को अपने साथ लिये हुए आया और भूतनाथ से बोला, "चलिए, मगर आंखों पर पट्टी बंधवाने की तकलीफ आपको उठानी पड़ेगी।" उसके जवाब में भूतनाथ यह कहकर उठ खड़ा हुआ, "सो तो मैं पहले से ही जानता हूं।"

भूतनाथ की आंखों पर पट्टी बांध दी गई और वे तीनों आदमी उसे अपने साथ लिये हुए इन्द्रदेव के पास जा पहुंचे। इन्द्रदेव के स्थान और उसके मकान की कैफियत हम पहिले लिख चुके हैं इसलिये यहां पुनः न लिखकर असल मतलब पर ध्यान देते हैं।

जिस समय भूतनाथ इन्द्रदेव के सामने पहुंचा उस समय इन्द्रदेव अपने कमरे में मसनद के सहारे बैठे हुए कोई ग्रंथ पढ़ रहे थे। भूतनाथ को देखते ही उन्होंने मुस्कुराकर कहा, "आओ-आओ भूतनाथ, अबकी तो बहुत दिनों में मुलाकात हुई है!"

भूत - (सलाम करके) बेशक बहुत दिनों पर मुलाकात हुई है। क्या कहें जमाने के हेर-फेर ने ऐसे-ऐसे कुढंगे कामों में फंसा दिया और अभी तक फंसा रक्खा है कि मेरी कमजोर जान को किसी तरह छुटकारे का दिन नसीब नहीं होता और इसी से आज बहुत दिनों पर आपके भी दर्शन हुए हैं।

इन्द्र - (हंसकर) तुम्हारी कमजोर जान! जो भूतनाथ हजारों मजबूत आदमियों को भी नीचा दिखाने की ताकत रखता है वह कहे कि 'मेरी कमजोर जान'!

भूत - बेशक ऐसा ही है। यद्यपि मैं अपने को बहुत कुछ कर गुजरने के लायक समझता था मगर आजकल ऐसी आफत में जान फंसी हुई है कि अक्ल कुछ काम नहीं करती।

इन्द्र - क्या, कुछ कहो भी तो?

भूत - मैं यही सब कहने और आपसे मदद मांगने के लिए तो आया ही हूं।

इन्द्र - मदद मांगने के लिए।

भूत - जी हां, आपसे बहुत बड़ी मदद की मुझे आशा है।

इन्द्र - सो कैसे क्या तुम नहीं जानते कि मायारानी का तिलिस्मी दारोगा मेरा गुरुभाई है और वह तुम्हें दुश्मनी की निगाह से देखता है?

भूत - इन बातों को मैं खूब जानता हूं और इतना जनाने पर भी आपसे मदद लेने के लिए आया हूं।

इन्द्र - यह तुम्हारी भूल है।

भूत - नहीं मेरी भूल कदापि नहीं है, यद्यपि आप दारोगा के गुरुभाई हैं मगर मैं इस बात को अच्छी तरह जानता हूं कि आपके और उसके मिजाज में उलटे-सीधे का फर्क है, और मैं जिस काम में आपसे मदद लिया चाहता हूं वह नेक और धर्म का काम है।

इन्द्र - (कुछ सोचकर) अगर तुम यह समझकर कि मैं तुम्हारी मदद न करूंगा मतलब कह सकते हो तो कहो, जैसा होगा मैं जवाब दूंगा।

भूत - यह तो मैं समझ ही नहीं सकता कि आपसे किसी तरह की मदद नहीं मिलेगी, मदद मिलेगी और जरूर मिलेगी क्योंकि आपसे और बलभद्रसिंह से दोस्ती थी और उस दोस्ती का बदला आप उस तरह नहीं अदा कर सकते जिस तरह दारोगा साहब ने किया था।

इस समय उस कमरे में वे तीनों आदमी भी मौजूद थे जो भूतनाथ को अपने साथ यहां तक लाये थे, इन्द्रदेव ने उन तीनों को बिदा करने के बाद कहा -

इन्द्र - क्या तुम उस बलभद्रसिंह के बारे में मुझसे कुछ मदद लिया चाहते हो जिसे मरे आज कई वर्ष बीत चुके हैं

भूत - जी हां, उसी बलभद्रसिंह के बारे में जिसकी लड़की तारा बनकर कमलिनी के साथ रहने वाली लक्ष्मीदेवी है और जिसे आप चाहे मरा हुआ समझते हैं मगर मैं मरा हुआ नहीं समझता।

इन्द्र - (आश्चर्य से) क्या तारा ने अपना भेद प्रकट कर दिया! और क्या तुम्हें कोई ऐसा सबूत मिला है जिससे समझा जाय कि बलभद्रसिंह अभी तक जीता है

भूत - जी, तारा का भेद यकायक प्रकट हो गया है जिसे मैं भी नहीं जानता था कि वह लक्ष्मीदेवी है, और बलभद्रसिंह के जीते रहने का सबूत भी मुझे मिल गया, मगर

आपने तारा का नाम इस ढंग से लिया जिससे मालूम होता है कि आप तारा का असल भेद पहिले ही से जानते थे।

इन्द्र - नहीं-नहीं, मैं भला क्योंकर जान सकता था कि तारा लक्ष्मीदेवी है, यह तो आज तुम्हारे ही मुंह से मालूम हुआ है। अच्छा तुम पहिले यह तो कह जाओ कि तारा का भेद क्योंकर प्रकट हुआ, तुम किस मुसीबत में पड़े हो, और इस बात का क्या सबूत तुम्हारे पास है कि बलभद्रसिंह अभी तक जीते हैं क्या बलभद्रसिंह जान-बूझकर कहीं छिपे हुए हैं या किसी की कैद में हैं?

भूत - नहीं-नहीं, बलभद्रसिंह जान-बूझकर छिपे हुए नहीं हैं बल्कि कहीं कैद में हैं। मैं उन्हें छुड़ाने की फिक्र में लगा हूं और इसी काम में आपसे मदद लिया चाहता हूं क्योंकि अगर बलभद्रसिंह का पता लग गया तो आपको दो जानें बचाने का पुण्य मिलेगा।

इन्द्र - दूसरा कौन?

भूत - दूसरा मैं, क्योंकि अगर बलभद्रसिंह का पता न लगेगा तो निश्चय है कि मैं भी मारा जाऊंगा।

इन्द्र - अच्छा तुम पहिले अपना पूरा हाल कह जाओ।

इतना सुनकर भूतनाथ ने अपना हाल उस जगह से जब भगवनिया के सामने नकली बलभद्रसिंह से उससे मुलाकात हुई थी कहना शुरू किया और इन्द्रदेव बड़े गौर से उसे सुनते रहे। भूतनाथ ने अपना कैदियों की हालत में रोहतासगढ़ पहुंचना, कृष्णा जिन्न से मुलाकात होना, मायारानी और दारोगा इत्यादि की गिरफ्तारी, राजा वीरेन्द्रसिंह के आगे मुकद्दमे की पेशी, कृष्णा जिन्न के पेश किये हुए अनूठे कलमदान की कैफियत, असली बलभद्रसिंह को खोज निकालने के लिए अपनी रिहाई, और राजा गोपालसिंह के पास से बिना कुछ मदद पाये बैरंग लौट आने का हाल सब पूरा-पूरा इन्द्रदेव से कह सुनाया। इन्द्रदेव थोड़ी देर तक चुपचाप कुछ सोचते रहे। भूतनाथ ने देखा कि उनके चेहरे का रंग थोड़ी-थोड़ी देर में बदलता है और कभी लाल कभी सफेद और कभी जर्द होकर उनके दिल की अवस्था का थोड़ाबहुत हाल प्रकट करता है।

इन्द्र - (कुछ देर बाद) मगर तुम्हारे इस किस्से में कोई ऐसा सबूत नहीं मिला जिससे बलभद्रसिंह का अभी तक जीते रहना साबित होता हो

भूत - क्या मैंने आपसे अभी नहीं कहा कि असली बलभद्रसिंह के जीते रहने का मुझे शक हुआ और कृष्णा जिन्न ने मेरे उस शक को यह कहकर विश्वास के साथ बदल दिया कि 'बेशक असली बलभद्रसिंह अभी तक कहीं कैद है और तू जिस तरह से बन सके उसका पता लगा।'

इन्द्र - हां यह तो तुमने कहा मगर मैं यह नहीं जानता कि कृष्णा जिन्न कौन है और उसकी बातों पर कहां तक विश्वास करना चाहिए।

भूत - अफसोस, आपने कृष्णा जिन्न की कार्रवाई पर अच्छी तरह ध्यान नहीं दिया जो मैं आपसे कह चुका हूं। यद्यपि मैं स्वयं उसे नहीं जानता परन्तु जिस समय कृष्णा जिन्न ने वह अनूठा कलमदान पेश किया जिसे देखने के साथ ही नकली बलभद्रसिंह की आधी जान निकल गई, जिस पर निगाह पड़ते ही लक्ष्मीदेवी बेहोश हो गई, जिसे एक झलक ही में मैं पहिचान गया। जिस पर मीनाकारी की तीन तस्वीरें बनी हुई थीं, और जिस पर बीचली तस्वीर के नीचे मीनाकारी के मोटे खूबसूरत अक्षरों में 'इन्दिरा' लिखा हुआ था, उसी समय मैं समझ गया कि यह साधारण नहीं है।

इन्द्र - (चौंककर) क्या कहा! क्या लिखा हुआ था? 'इन्दिरा!' और यह कहने के साथ ही इन्द्रदेव के चेहरे का रंग उड़ गया तथा आश्चर्य ने उस पर अपना रोआब जमा लिया।

भूत - हां-हां, 'इन्दिरा' - बेशक यही लिखा हुआ था।

अब इन्द्रदेव अपने को किसी तरह सम्हाल न सका। वह घबराकर उठ खड़ा हुआ और धीरे-धीरे निम्नलिखित बातें कहता हुआ इधर-उधर घूमने लगा -

"ओफ, मुझे धोखा हुआ! वाह रे दारोगा, तैने इन्द्रदेव ही पर अपना हाथ साफ किया, जिसने तेरे सैकड़ों कसूर माफ किये और फिर भी तेरे रोने-पीटने और बड़ी-बड़ी कसमें खाने पर विश्वास करके तुझे राजा वीरेन्द्रसिंह की कैद से छुड़ाया! वाह रे जैपाल, तुझे तो इस तरह तड़पा-तड़पाकर मारूंगा कि गन्दगी पर बैठने वाली मक्खियों को भी तेरे हाल पर रहम आवेगा! लक्ष्मीदेवी का बाप बनकर चला था मायारानी और दारोगा की मदद करने! वाह रे कृष्णा जिन्न ईश्वर तेरा भला करे! मगर इसमें भी कोई शक नहीं कि तुझको यह हाल-हाल ही में मालूम हुआ है। आह, मैंने वास्तव में धोखा खाया। लक्ष्मीदेवी की बहुत ही प्यारी इन्दिरा! अच्छा-अच्छा, ठहर जा, देख तो सही मैं क्या करता हूं। भूतनाथ ने यद्यपि बहुत से बुरे काम किये हैं परन्तु अब वह उनका

प्रायश्चित्त भी बड़ी खूबी के साथ कर रहा है। (भूतनाथ की तरफ देखके) अच्छा-अच्छा, मैं तुम्हारा साथ दूंगा मगर अभी नहीं, जब तक मैं उस कलमदान को अपनी आंखों से न देख लूंगा तब तक मेरा जी ठिकाने न होगा।"

भूत - (जो बड़े गौर से इन्द्रदेव का बड़बड़ाना सुन रहा था) हां-हां, आप उसे देख सकते हैं, मेरे साथ रोहतासगढ़ चलिये।

इन्द्र - तुम्हारे साथ चलने की कोई आवश्यकता नहीं, तुम इसी जगह रहो, मैं अकेला ही जाऊंगा और बहुत जल्द ही लौटा आऊंगा।

इतना कहकर इन्द्रदेव ने ताली बजाई और आवाज के साथ ही अपने दो आदमियों को कमरे के अन्दर आते देखा। इन्द्रदेव अपने आदमियों से यह कहकर कि, "तुम लोग भूतनाथ को खातिरदारी के साथ यहां रक्खो जब तक कि मैं एक छोटे सफर से न लौट आऊं", कमरे के बाहर हो गये और तब दूसरे कमरे में जिसकी ताली वे अपने पास रक्खा करते थे ताला खोलकर चले गये। इस कमरे में खूंटियों के सहारे तरह-तरह के कपड़े, ऐयारी के बहुत से बटुए, रंग-बिरंगे नकाब, एक से एक बढ़कर नायाब और बेशकीमत हर्बे और कमरबन्द वगैरह लटक रहे थे और एक तरफ लोहे तथा लकड़ी के छोटे-बड़े सन्दूक भी रक्खे हुए थे। इन्द्रदेव ने अपने मतलब का एक जोड़ा (बेशकीमत पोशाक) खूंटी से उतारकर पहिर लिया और जो कपड़े पहिले पहिरे हुए थे उतारकर एक तरफ रख दिये। सुर्ख रंग की नकाब उतारकर चेहरे पर लगाई, ऐयारी का बटुआ बगल में लटकाने के बाद बेशकीमत हर्बों से अपने को दुरुस्त किया और इसके बाद लोहे के एक सन्दूक में से कुछ निकालकर कमर में रख कमरे के बाहर निकल आये, कमरे का ताला बन्द किया और तब बिना भूतनाथ से मुलाकात किये ही वहां से रवाना हो गये।

बयान - 11

रोहतासगढ़ में महल के अन्दर एक खूबसूरत सजे हुए कमरे में राजा वीरेन्द्रसिंह ऊंची गद्दी के ऊपर बैठे हुए हैं, बगल में तेजसिंह और देवीसिंह बैठे हैं, तथा सामने की तरफ किशोरी, कामिनी, लक्ष्मीदेवी, कमलिनी, लाडिली और कमला अदब के साथ सिर झुकाये बैठी हैं। आज राजा वीरेन्द्रसिंह अपने दोनों ऐयारों के सहित यहां बैठकर उन सभों की बीती हुई दुःख भरी कहानी बड़े गौर से कुछ सुन चुके हैं और बाकी सुन रहे हैं। दरवाजे पर भैरोसिंह और तारासिंह खड़े पहरा दे रहे हैं। किसी लौंडी

तक को भी वहां आने की आज्ञा नहीं है। किशोरी, कामिनी, कमलिनी, कमला और लक्ष्मीदेवी का हाल सुन चुके हैं। इस समय लाडिली अपना किस्सा कह रही है।

लाडिली अपना किस्सा कहते-कहते बोली -

लाडिली - जब मायारानी की आज्ञानुसार धनपत और मैं नानक और किशोरी के साथ दुश्मनी करने के लिए जमानिया से निकले तो शहर के बाहर होकर हम दोनों अलग-अलग हो गए। इत्तिफाक की बात है कि धनपत सूरत बदलके इसी किले में आ रही और मैं भी घूमती-फिरती भेष बदले हुए किशोरी का यहां होना सुनकर इसी किले में आ पहुंची और हम दोनों ही ने रानी साहिबा की नौकरी कर ली। उस समय मेरा नाम लाली था। यद्यपि इस मकान में मेरी और धनपत की मुलाकात हुई और बहुत दिनों तक हम दोनों आदमी एक ही जगह रहे भी, मगर न तो मैंने धनपत को पहिचाना जो कुन्दन के नाम से यहां रहती थी और न धनपत ही ने मुझे पहिचाना। (ऊंची सांस लेकर) अफसोस, मुझे उस समय का हाल कहते शर्म मालूम होती है, क्योंकि मैं बेचारी निर्दोष किशोरी के साथ दुश्मनी करने के लिए तैयार थी। यद्यपि मुझे किशोरी की अवस्था पर रहम आता था मगर मैं लाचार थी क्योंकि मायारानी के कब्जे में थी और इस बात को खूब समझती थी कि यदि मैं मायारानी का हुक्म न मानूंगी तो निःसन्देह वह मेरा सिर काट लेगी।

इतना कहकर लाडिली रोने लगी।

वीरेन्द्र - (दिलासा देते हुए) बेटी, अफसोस करने को कोई जगह नहीं है। यह तो बनी-बनाई बात है कि यदि कोई धर्मात्मा या नेक आदमी शैतान के कब्जे में पड़ा हुआ होता है तो उसे झक मारकर शैतान की बात माननी पड़ती है। मैं खूब समझता हू और विश्वास दिलाया चाहता हूं कि तू नेक है, तेरा कोई दोष नहीं, जो कुछ किया कम्बख्त दारोगा तथा मायारानी ने किया, अस्तु तू कुछ चिन्ता मत कर और अपना हाल कह।

आंचल से आंसू पोंछकर लाडिली ने फिर कहना शुरू किया -

लाडिली - मैं चाहती थी कि किशोरी को अपने कब्जे में कर लूं और तिलिस्मी तहखाने की राह से बाहर होकर इसे मायारानी के पास ले जाऊं तथा धनपत का भी इरादा यही था। इस सबब से कि यहां का तहखाना एक छोटा-सा तिलिस्म है और जमानिया के तिलिस्म से सम्बन्ध रखता है, यहां के तहखाने का बहुत कुछ हाल मायारानी को मालूम है और उसने मुझे और धनपत को बता दिया था अस्तु किशोरी

को लेकर यहां के तहखाने की राह से निकल जाना मेरे या धनपत के लिए कोई बड़ी बात न थी। इसके अतिरिक्त यहां एक बुढ़िया रहती थी जो रिश्ते में राजा दिग्विजयसिंह की बूआ होती थी। वह बड़ी ही सूधी, नेक तथा धर्मात्मा थी और बड़ी सीधी चाल बल्कि फकीरी ढंग पर रहा करती थी। मैंने सुना है कि वह मर गई, अगर जीती होती तो आपसे मुलाकात करा देती। खैर, मुझे यह बात मालूम हो चुकी थी कि वह बुढ़िया यहां के तहखाने का हाल बहुत ज्यादे जानती है। अतएव मैंने उससे दोस्ती पैदा कर ली और तब मुझे मालूम हुआ कि वह किशोरी पर दया करती है और चाहती है कि वह किसी तरह यहां से निकलकर राजा वीरेन्द्रसिंह के पास पहुंच जाय। मैंने उसके दिल में विश्वास दिला दिया कि किशोरी को यहां से निकालकर चुनार पहुंचा देने के विषय में जी जान से कोशिश करूंगी और इसीलिये उस बुढ़िया ने भी यहां के तहखाने का बहुत-सा हाल मुझसे कहा बल्कि उस राह से निकल जाने की तर्कीब भी बताई मगर धनपत जो कुन्दन के नाम से यहीं रहती थी बराबर मेरे काम में बाधा डाला करती और मैं भी इसी फिक्र में लगी हुई थी कि किसी तरह उसे दबाना चाहिए जिससे वह मेरा मुकाबला न कर सके।एक दिन आधी रात के समय मैं अपने कमरे से निकलकर कुन्दन के कमरे की तरफ चली। जब उसके पास पहुंची तो किसी आदमी के पैर की आहट मिली जो कुन्दन की तरफ जा रहा था। मैं रुक गई और जब वह आदमी आगे बढ़कर कुन्दन के मकान के अन्दर चला गया तब मैं धीरे-धीरे कदम रखकर उस मकान के पास पहुंची जिसमें कुन्दन रहती थी। उसकी कुर्सी बहुत ऊंची थी, पांच सीढ़ियां चढ़कर सहन में पहुंचना होता था और उसके बाद कमरे के अन्दर जाने का दरवाजा था, वह कमरा अभी तक मौजूद है शायद आप उसे देखें, सीढ़ियों के दोनों बगल चमेली की घनी टट्टी थीं, उसी टट्टी में छिपकर उस आदमी के लौटने की राह देखने लगी जो मेरे सामने ही उस मकान में गया था। आधा घण्टे के बाद वह आदमी कमरे के बाहर निकला, उस समय कुन्दन भी उसके साथ थी। जब वह सहन की सीढ़ियां उतरने लगा तो कुन्दन ने उसे रोककर धीरे से कहा, "मैं फिर कहे देती हूं कि आपसे मुझे बड़ी उम्मीदें हैं। जिस तरह आप गुप्त राह से इस किले के अन्दर जाते हैं, उसी तरह मुझे किशोरी के सहित निकाल तो ले जायेंगे' इसके जवाब में उस आदमी ने कहा, "हां-हां, इस बात का तो मैं तुमसे वादा ही कर चुका हूं, अब तुम किशोरी को अपने काबू में करने का उद्योग करो, मैं तीसरे-चौथे दिन यहां आकर तुम्हारी खबर ले जाया करूंगा।" इस पर कुन्दन ने फिर कहा, "मगर मुझे इस बात की खबर पहिले ही हो जाया करे कि आज आप आधी रात के समय यहां आवेंगे तो अच्छा हो।" इसके जवाब में उस आदमी ने अपनी जेब में से एक नारंगी निकालकर कुन्दन के हाथ में दी और कहा, "इसी रंग की नारंगी उस दिन तुम

बाग के उत्तर और पश्चिम वाले कोने में संध्या के समय देखोगी जिस दिन तुमसे मिलने के लिये मैं यहां आने वाला होऊंगा।" कुन्दन ने वह नारंगी उसके हाथ से ले ली। सीढ़ियों के दोनों तरफ फूलों के गमले रक्खे हुए थे, उनमें से एक गमले में कुन्दन ने वह नारंगी रख दी और उस आदमी के साथ ही साथ थोड़ी दूर तक उसे पहुंचाने की नीयत से आगे की तरफ बढ़ गई। मैं छिपे-छिपे सब-कुछ देख-सुन रही थी। जब कुन्दन आगे बढ़ गई और उस जगह निराला हुआ तब मैं झाड़ी के अन्दर से निकली और गमले में से उस नारंगी को लेकर जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाती हुई अपने मकान में चली आई। किशोरी अपना हाल कहते समय आपसे कह चुकी है कि, "एक दिन मैंने नारंगी दिखाकर कुन्दन को दबा लिया था।" यह वही नारंगी थी जिसे देखकर कुन्दन समझ गई कि मेरा भेद लाली को मालूम हो गया, यदि वह राजा साहब को इस बात की इत्तिला दे देगी और उस आदमी को जो पुनः मेरे पास आने वाला है और जिसे इस बात की खबर नहीं है, गिरफ्तार करा देगी तो मैं मारी जाऊंगी। अस्तु उसे दबना ही पड़ा क्योंकि वास्तव में यदि मैं चाहती तो कुन्दन के मकान में उस आदमी को गिरफ्तार करा देती, और उस समय महाराज दिग्विजयसिंह दोनों का सिर काटे बिना न रहते।

वीरेन्द्र - ठीक है, अब मैं समझ गया, अच्छा तो फिर यह भी मालूम हुआ कि वह आदमी जो कुन्दन के पास आया करता था कौन था?

लाडिली - पीछे तो मालूम हो ही गया कि वह शेरसिंह थे और उन्होंने कुन्दन के बारे में धोखा खाया।

देवीसिंह - (वीरेन्द्रसिंह से) मैंने एक दफे आपसे अर्ज किया था कि शेरसिंह ने कुन्दन के बारे में धोखा खाने का हाल मुझसे खुद बयान किया था और लाली को नीचा दिखाने या दबाने की नीयत से 'खून से लिखी किताब' तथा 'आंचल पर गुलामी क दस्तावेज' वाला जुमला भी शेरसिंह ही ने कुन्दन को बताया था और शेरसिंह ने छिपकर किसी दूसरे आदमी की बातचीत से वह हाल मालूम किया था।

वीरेन्द्र - ठीक है, मगर यह नहीं मालूम हुआ कि शेरसिंह ने छिपकर जिन लोगों की बातचीत सुनी थी वे कौन थे?

देवी - हां इसका हाल मालूम न हुआ, शायद लाडिली जानती हो।

लाडिली - जी हां, जब मैं यहां से लौटकर मायारानी के पास गई तब मुझे मालूम हुआ कि वे लोग मायारानी के दोनों ऐयार बिहारीसिंह और हरनामसिंह थे जो हम लोगों

का पता लगाने तथा राजकुमारों को गिरफ्तार करने की नीयत से इस तरफ आये हुए थे।

वीरेन्द्र - ठीक है, अच्छा तो अब हम यह सुनना चाहते हैं कि 'खून से लिखी किताब' और 'गुलामी की दस्तावेज' से क्या मतलब था और तू इन शब्दों को सुनकर क्यों डरी थी?

लाडिली - खून से लिखी किताब को आप जानते ही हैं जिसका दूसरा नाम 'रक्तग्रन्थ' है, और जो आजकल आपके कुंअर इन्द्रजीतसिंहजी के कब्जे में है।

वीरेन्द्र - हां-हां सो क्यों न जानेंगे, वह तो हमारी ही चीज है और हमारे ही यहां से चोरी की गई थी।

लाडिली - जी हां उन शब्दों के विषय में भी मैंने बहुत बड़ा धोखा खाया। अगर मैं कुन्दन को पहिचान जाती तो मुझे उन शब्दों से डरने की आवश्यकता न थी। खून से लिखी किताब अर्थात् रक्तग्रन्थ से जितना सम्बन्ध मुझे था उतना ही कुन्दन को भी मगर कुन्दन ने समझा कि मैं भूतनाथ के रिश्तेदारों में से हूं जिसने रक्तग्रन्थ की चोरी की थी और मैंने यह सोचा कि कुन्दन को मेरा असल हाल मालूम हो गया, वह जान गई थी कि मैं मायारानी की बहिन लाडिली हूं और राजा दिग्विजयसिंह को धोखा देकर यहां आई हूं। मैं इस बात को खूब जानती थी कि यह रोहातसगढ़ का तहखाना जमानिया के तिलिस्म से सम्बन्ध रखता है और यदि राजा दिग्विजयसिंह के हाथ रक्तग्रन्थ लग जाय तो वह बड़ा ही खुश हो क्योंकि वह रक्तग्रन्थ का मतलब खूब जानता है और उसे यह भी मालूम था कि भूतनाथ ने रक्तग्रन्थ की चोरी की थी और उसके हाथ से मायारानी रक्तग्रन्थ ले लेने के उद्योग में लगी हुई थी और उस उद्योग में सबसे भारी हिस्सा मैंने ही लिया था। यह सब हाल उसे कम्बख्त दारोगा की जुबानी मालूम हुआ था क्योंकि वह राजा दिग्विजयसिंह से मिलने के लिए बराबर आया करता था और उससे मिला हुआ था। निःसन्देह अगर मेरा हाल राजा दिग्विजयसिंह को मालूम हो जाता तो वह मुझे कैद कर लेता और 'रक्तग्रन्थ' के लिये मेरी बड़ी दुर्दशा करता। बस इसी खयाल ने मुझे बदहवास कर दिया और मैं ऐसी डरी कि तनोबदन की सुध जाती रही। क्या दिग्विजयसिंह कभी इस बात को सोचता कि उसकी दारोगा से दोस्ती है और दारोगा लाडिली का पक्षपाती है कभी नहीं। वह बड़ा ही मतलबी और खोटा था।

वीरेन्द्र - बेशक ऐसा ही है और तुम्हारा डरना बहुत वाजिब था, मगर हां एक बात तो तुमने कही ही नहीं।

लाडिली - वह क्या?

वीरेन्द्र - 'आंचल पर गुलामी का दस्तावेज' से क्या मतलब था?

राजा वीरेन्द्रसिंह की यह बात सुनकर लाडिली शर्मा गई और उसने अपने दिल की अवस्था को रोककर सिर नीचे कर लिया, जब राजा वीरेन्द्रसिंह ने पुनः टोका तब हाथ जोड़कर बोली, "आशा है कि महाराजा साहब जवाब चाहने के लिए जिद न करेंगे और मेरा यह अपराध क्षमा करेंगे। मैं इसका जवाब अभी नहीं दिया चाहती और बहाना करना या झूठ बोलना भी पसन्द नहीं करती!"

लाडिली की बात सुनकर राजा वीरेन्द्रसिंह चुप हो रहे और कोई दूसरी बात पूछा ही चाहते थे कि भैरोसिंह ने कमरे के अन्दर पैर रक्खा।

वीरेन्द्र - (भैरो से) क्या है?

भैरो - बाहर से खबर आई है कि मायारानी के दारोगा के गुरुभाई इन्द्रदेव जिनका हाल मैं एक दफे अर्ज कर चुका हूं, महाराज का दर्शन करने के लिए हाजिर हुए हैं। उन्हें ठहराने की कोशिश की गई थी मगर वह कहते हैं कि मैं पल-भर भी नहीं अटक सकता और शीघ्र मुलाकात की आशा रखता हूं तथा मुलाकात भी महल के अन्दर लक्ष्मीदेवी के सामने करूंगा। यदि इस बात में महाराजा साहब को उज्र हो तो लक्ष्मीदेवी से राय लें और जैसा वह कहें वैसा करें।

इसके पहिले कि वीरेन्द्रसिंह कुछ सोचें या लक्ष्मीदेवी से राय लें लक्ष्मीदेवी अपनी खुशी को रोक न सकी, उठ खड़ी हुई और हाथ जोड़कर बोली, "महाराज से मैं सविनय प्रार्थना करती हूं कि इन्द्रदेवजी को इसी जगह आने की आज्ञा दी जाये। वे मेरे धर्म के पिता हैं, मैं अपना किस्सा कहते समय अर्ज कर चुकी हूं कि उन्होंने मेरी जान बचाई थी, वे हम लोगों के सच्चे खैरखाह और भला चाहने वाले हैं।"

वीरेन्द्र - बेशक - बेशक, हम उन्हें इसी जगह बुलायेंगे, हमारी लड़कियों को उनसे पर्दा करने की कोई आवश्यकता नहीं है (भैरोसिंह की तरफ देखकर) तुम स्वयं जाओ और उन्हें शीघ्र इसी जगह ले आओ।

"बहुत अच्छा" कहकर भैरोसिंह चला गया और थोड़ी ही देर में इन्द्रदेव को अपने साथ लिये हुए आ पहुंचा। लक्ष्मीदेवी उन्हें देखते ही उनके पैरों पर गिर पड़ी और आंसू बहाने लगी। इन्द्रदेव ने उसके सिर पर हाथ फेरकर आशीर्वाद दिया, कमलिनी और लाडिली ने भी उन्हें प्रणाम किया और राजा वीरेन्द्रसिंह ने सलाम जवाब देने के बाद उन्हें बड़ी खातिर से अपने पास बैठाया।

वीरेन्द्र - (मुस्कुराते हुए) कहिये आप कुशल से तो हैं! राह में कुछ तकलीफ तो नहीं हुई

इन्द्रदेव - (हाथ जोड़कर) आपकी कृपा से मैं बहुत अच्छा हूं, सफर में हजार तकलीफ उठाकर आने वाला भी आपका दर्शन पाते ही कृतार्थ हो जाता है, फिर मेरी क्या बात है जिसे इस सफर पर ध्यान देने की छुट्टी अपने खयालों के उलझन की बदौलत बिल्कुल ही न मिली।

वीरेन्द्र - तो मालूम होता है कि आप किसी भारी काम के लिये यहां आये हैं। (हंसकर) क्या अबकी फिर दारोगा साहब को छुड़ाकर ले जाने का इरादा है!

इन्द्रदेव - (शर्मिन्दगी के साथ हंसकर) जी नहीं, अब मैं उस कम्बख्त की कुछ भी मदद नहीं कर सकता, जिसे गुरुभाई समझकर आपके कैदखाने से छुड़ाया था और आइन्दे नेकनीयती के साथ जिन्दगी बिताने की जिससे मैंने कसम ले ली थी, अफसोस दिन-दिन उसकी शैतानी का पता लगता ही जाता है।

वीरेन्द्र - इधर का हाल तो आपने न सुना होगा?

इन्द्रदेव - जी भूतनाथ की जुबानी मैं सब हाल सुन चुका हूं और इस सबब से ही हाजिर हुआ हूं। मुझे यह देखकर बड़ी खुशी हुई कि लक्ष्मीदेवी को अपनायत के ढंग पर आपके सामने बैठने की इज्जत मिली है और वह बहुत तरह के दुःख सहने के बाद अब हर तरह से प्रसन्न और सुखी हुआ चाहती है।

वीरेन्द्र - निःसन्देह लक्ष्मीदेवी को मैं अपनी लड़की के समान देख रहा हूं और उसके साथ तुमने जो कुछ नेकी की है उसका हाल भी उसी की जुबानी सुनकर बहुत प्रसन्न हूं। इस समय मेरे दिल में तुमसे मिलने की इच्छा हो रही थी और किसी को तुम्हारे पास भेजने के विचार में था कि तुम आ पहुंचे। बलभद्रसिंह और भूतनाथ के मामले ने तो हम लोगों को अजब दुविधा में डाल रखा है, अब कदाचित् तुम्हारी जुबानी उनका खुलासा हाल मालूम हो जाय।

इन्द्रदेव - निःसन्देह वह एक आश्चर्य की घटना हो गई है, जिसकी मुझे कुछ आशा न थी।

लक्ष्मीदेवी - (इन्द्रदेव से) मेरे प्यारे चाचा, (क्योंकि वह इन्द्रदेव को चाचा कहके ही पुकारा करती थी) जब भूतनाथ की जुबानी आप सब हाल सुन चुके हैं तो निःसन्देह मेरी तरह आपको भी इस बात का विश्वास हो गया होगा कि मेरे बदकिस्मत पिता अभी तक जीते हैं मगर कहीं कैद हैं।

इन्द्रदेव - बेशक ऐसा ही है।

वीरेन्द्र - तो क्या भूतनाथ उन्हें खोज निकालेगा?

इन्द्रदेव - इसमें मुझे सन्देह है, क्योंकि वह सब तरफ से लाचार होकर मुझसे मदद मांगने गया था और उसकी जुबानी सब हाल सुनकर मैं यहां आया हूं।

वीरेन्द्र - तो तुम इस काम में उसको मदद दोगे?

इन्द्र - अवश्य मदद दूंगा! असल तो यों है कि इस समय बलभद्रसिंह को खोज निकालने की चाह बनिस्बत भूतनाथ के मुझको बहुत ज्यादे है और उनके जीते रहने का विश्वास भी सभों से ज्यादे मुझी को हुआ, इसी तरह से बलभद्रसिंह का पता लगाने में मेरी बुद्धि जितना काम कर सकती है उतनी भूतनाथ की नहीं (ऊंची सांस लेकर) अफसोस आज के दो दिन पहिले मुझे इस बात का स्वप्न में भी गुमान न था कि अपने प्यारे दोस्त बलभद्रसिंह के जीते रहने की खबर मेरे कानों तक पहुंचेगी और मुझे उनका पता लगाना होगा!

वीरेन्द्र - तुम्हारे इस कहने से पाया जाता है कि बनिस्बत हम लोगों के तुमको भूतनाथ की बातों का ज्यादे यकीन हुआ है और अगर ऐसा ही है तो आज के बहुत दिन पहिले तुमको या किसी और को इस बात की इत्तिला न देने का इलजाम भी भूतनाथ पर लगाया जायगा!

इन्द्रदेव - जी नहीं, इस घटना के पहिले भूतनाथ को भी बलभद्रसिंह के जीते रहने का विश्वास न था, हां कुछ शक-सा हो गया था, उस शक को यकीन के दर्जे तक पहुंचाने के लिए भूतनाथ ने बहुत उद्योग किया और वही उद्योग इस समय उसका दुश्मन हो रहा है। सच तो यह है कि अगर इसके पहिले बलभद्रसिंह के जीते रहने की खबर भूतनाथ देता भी तो मुझे विश्वास न होता और मैं उसे झूठा या दगाबाज समझता।

वीरेन्द्र - (मुस्कुराकर) तुम्हारी बातें तो और भी उलझन पैदा करती हैं! मालूम होता है कि भूतनाथ की बातों के अतिरिक्त और भी कोई सच्चा सबूत बलभद्रसिंह के जीते रहने के बारे में तुमको मिला है और भूतनाथ वास्तव में उन दोषों का दोषी नहीं है जो कि उसकी दस्तखती चीठियों के पढ़ने से मालूम हुआ है।

इन्द्रदेव - बेशक ऐसा ही है।

लक्ष्मीदेवी - (ताज्जुब से) तो क्या किसी और ने भी मेरे पिता के जीते रहने की खबर आपको दी है।

इन्द्रदेव - नहीं।

लक्ष्मी - तो आज कैसे भूतनाथ के कहने का इतना विश्वास आपको हुआ जबकि आज के पहिले उसके कहने का कुछ भी असर न होता?

वीरेन्द्र - मैं भी यही सवाल तुमसे करता हूं।

इन्द्रदेव - भूतनाथ के इस कहने ने कि, "कृष्णा जिन्न ने एक कलमदान आपके सामने पेश किया था जिस पर मीनाकारी की तीन तस्वीरें बनी हुई थीं और उसे देखते ही नकली बलभद्रसिंह बदहवास हो गया था" - मुझे असल बलभद्रसिंह के जीते रहने का विश्वास दिला दिया। क्या यह बात ठीक है क्या कृष्णा जिन्न ने कोई कलमदान पेश किया?

वीरेन्द्र - हां एक कलमदान...।

लक्ष्मी - (बात काटकर) हां-हां मेरे प्यारे चाचा, वही कलमदान जो मेरी बहुत ही प्यारी चाची ने मुझे विवाह के...।

इतना कहते - कहते लक्ष्मीदेवी का गला भर आया और वह रोने लगी।

इन्द्रदेव - (व्याकुलता से) मैं उस कलमदान को शीघ्र ही देखना चाहता हूं (तेजसिंह से) आप कृपा कर उसे शीघ्र ही मंगवाइए।

तेज - (अपने बटुए में से कलमदान निकालकर और इन्द्रदेव के हाथ में देकर) लीजिए तैयार है। मैं इसे हर वक्त अपने पास रखता हूं, और उस समय की राह देखता हूं जब इसके अद्भुत रहस्य का पता हम लोगों को लगेगा।

इन्द्रदेव - (कलमदान को अच्छी तरह देखकर) निःसन्देह भूतनाथ ने जो कुछ कहा ठीक है। अफसोस, कम्बख्तों ने बड़ा धोखा दिया। अच्छा ईश्वर मालिक है!!

लक्ष्मी - क्यों यह वही कलमदान है न?

इन्द्रदेव - हां तुम इसे वही कलमदान समझो। (क्रोध में लाल-लाल आंखें करके) ओफ, अब मुझसे बरदाश्त नहीं हो सकता और न मैं ऐसे काम में विलम्ब कर सकता हूं! (वीरेन्द्र से) क्या आप इस काम में मेरी सहायता कर सकते हैं?

वीरेन्द्र - जो कुछ मेरे किये हो सकता है उसे करने के लिए मैं तैयार हूं, मुझे बड़ी खुशी होगी जब मैं अपनी आंखों से बलभद्रसिंह को सही-सलामत देखूगा।

इन्द्रदेव - और आप मुझ पर विश्वास भी कर सकते हैं?

वीरेन्द्र - हां मैं तुम पर उतना ही विश्वास करता हूं जितना इन्द्रजीत और आनन्द पर।

इन्द्रदेव - (हाथ जोड़कर और गद्‌गद्‌ होकर) अब मुझे विश्वास हो गया कि अपने दोनों प्रेमियों को शीघ्र देखूंगा।

वीरेन्द्र - (आश्चर्य से) दूसरा कौन?

लक्ष्मी - (चौंककर) ओह मैं समझ गई, हे ईश्वर, यह क्या, क्या मैं अपनी बहुत प्यारी 'इन्दिरा' को भी देखूंगी!

इन्द्रदेव - हां यदि ईश्वर चाहेगा तो ऐसा ही होगा।

वीरेन्द्र - अच्छा यह बताओ कि अब तुम क्या चाहते हो?

इन्द्रदेव - मैं नकली बलभद्रसिंह, दारोगा और मायारानी को देखना चाहता हूं और साथ ही इसके इस बात की आज्ञा चाहता हूं कि उन लोगों के साथ मैं जैसा बर्ताव चाहे कर सकूं या उन तीनों में से किसी को यदि आवश्यकता हो तो अपने साथ ले जा सकूं।

इन्द्रदेव की बात सुनकर वीरेन्द्रसिंह ने ऐसे ढंग से तेजसिंह की तरफ देखा और इशारे से कुछ पूछा कि सिवाय उनके और तेजसिंह के किसी दूसरे को मालूम न हुआ और जब तेजसिंह ने भी इशारे में ही कुछ जवाब दे दिया तब इन्द्रदेव की तरफ देखकर

कहा, "वे तीनों कैदी सबसे बढ़कर लक्ष्मीदेवी के गुनाहगार हैं जो कुछ तुम्हारे और हमारे धर्म की लड़की है। इसलिये उन कैदियों के विषय में जो कुछ तुमको पूछना या करना हो उसकी आज्ञा लक्ष्मीदेवी से ले लो, हमें किसी तरह का उज्र नहीं है।"

लक्ष्मी - (प्रसन्न होकर) यदि महाराज की मुझ पर इतनी कृपा है तो मैं कह सकती हूं कि उन कैदियों में से, जिनकी बदौलत मेरी जिन्दगी का सबसे कीमती हिस्सा बरबाद हो गया, उनमें जिसे मेरे चाचा चाहें ले जायं।

वीरेन्द्र - बहुत अच्छा, (इन्द्रदेव से) क्या उन कैदियों को यहां हाजिर करने के लिए हुक्म दिया जाय?

इन्द्रदेव - वे सब कहां रक्खे गए हैं?

वीरेन्द्र - यहां के तिलिस्मी तहखाने में।

इन्द्रदेव - (कुछ सोचकर) उत्तम यही होगा कि मैं उस तहखाने ही में उन कैदियों को देखूं और उनसे बातें करूं, तब जिसकी आवश्यकता हो उसे अपने साथ ले जाऊं।

वीरेन्द्र - जैसी तुम्हारी मर्जी, अगर कहो तो हम भी तुम्हारे साथ तहखाने में चलें।

इन्द्रदेव - आप जरूर चलें, यदि यहां के तहखाने की कैफियत आपने अच्छी तरह देखी न हो तो मैं आपको तहखाने की सैर भी कराऊंगा बल्कि ये लड़कियां भी साथ रहें तो कोई हर्ज नहीं, परन्तु यह काम मैं रात्रि के समय किया चाहता हूं और इस समय केवल इसी बात की जांच किया चाहता हूं कि भूतनाथ ने मुझसे जो-जो बातें कही थीं वे सब सच हैं या झूठ।

वीरेन्द्र - ऐसा ही होगा।

इसके बाद बहुत देर तक इन्द्रदेव, लक्ष्मीदेवी, कमलिनी, किशोरी, लाडिली, तेजसिंह और वीरेन्द्रसिंह इत्यादि में बातें होती रहीं और बीती हुई बातों को इन्द्रदेव बड़े गौर से सुनते रहे। इसके बाद भोजन का समय आया और दो-तीन घण्टे के लिए सब कोई जुदा हुए। राजा वीरेन्द्रसिंह की इच्छानुसार इन्द्रदेव की बड़ी खातिर की गई और वह जब अकेले रहे बलभद्रसिंह और कृष्णा जिन्न के विषय में गौर करते रहे। जब संध्या हुई सब कोई फिर उसी जगह इकट्ठे हुए और बातचीत होने लगी। इन्द्रदेव ने राजा वीरेन्द्रसिंह से पूछा, "कृष्णा जिन्न का असल हाल आपको मालूम हुआ कि नहीं क्या उसने अपना परिचय आपको दिया'

वीरेन्द्र - पहिले तो उसने अपने को बहुत छिपाया मगर भैरोसिंह ने गुप्त रीति से पीछा करके उसका हाल जान लिया। जब कृष्णा जिन्न को मालूम हो गया कि भैरोसिंह ने उसे पहिचान लिया तब उसने भैरोसिंह को बहुत कुछ ऊंच-नीच समझाकर इस बात की प्रतिज्ञा करा ली कि सिवा मेरे और तेजसिंह के वह कृष्णा जिन्न का असल हाल किसी से न कहे और न हम तीनों में से कोई किसी चौथे को उसका भेद बतावे। पर अब मैं देखता हूं तो कृष्णा जिन्न का असल हाल तुमको भी मालूम होना उचित जान पड़ता है, पर साथ ही मैं अपने ऐयार की ली हुई प्रतिज्ञा को भी तोड़ना नहीं चाहता।

इन्द्रदेव - निःसन्देह कृष्णा जिन्न का हाल जानना मेरे लिए आवश्यक है परन्तु मैं भी यह नहीं पसन्द करता कि भैरोसिंह या आपकी मंडली में से किसी की प्रतिज्ञा भंग हो। आप इसके लिए चिन्ता न करें, मैं कृष्णा जिन्न को पहिचाने बिना नहीं रह सकता, बस एक दफे सामना होने की देर है।

वीरेन्द्र - मेरा भी यही विश्वास है।

इन्द्रदेव - अच्छा तो अब उन कैदियों के पास चलना चाहिए।

वीरेन्द्र - चलो हम तैयार हैं (तेजसिंह, देवीसिंह, लक्ष्मीदेवी, कमलिनी और किशोरी इत्यादि की तरफ इशारा करके) इन सभों को भी लेते चलें?

इन्द्रदेव - जी हां, मैं तो पहिले ही अर्ज कर चुका हूं, बल्कि ज्योतिषीजी तथा भैरोसिंह को भी लेते चलिये।

इतना सुनते ही राजा वीरेन्द्रसिंह उठ खड़े हुए और सभों को साथ लिये हुए तहखाने की तरफ रवाना हुए। जगन्नाथ ज्योतिषी को बुलाने के लिए देवीसिंह भेज दिये गये।

ये लोग धीरे-धीरे जब तक तहखाने के दरवाजे पर पहुंचे तब तक जगन्नाथ ज्योतिषी भी आ गये और सब कोई एक साथ मिलकर तहखाने के अन्दर गये।

इस तहखाने के अन्दर जाने वाले रास्ते का हाल हम पहिले लिख चुके हैं इसलिए पुनः लिखने की आवश्यकता न जानकर केवल मतलब की बातें ही लिखते हैं।

ये सब लोग तहखाने के अन्दर जाकर उसी दालान में पहुंचे जिसमें तहखाने के दारोगा साहब रहा करते थे और जिसके पीछे की तरफ कई कोठरियां थीं। इस समय भैरोसिंह और देवीसिंह अपने हाथ में मशाल लिये हुए थे जिसकी रोशनी से बखूबी

उजाला हो गया था और वहां की हर एक चीज साफ-साफ दिखाई दे रही थी। वे लोग इन्द्रदेव के पीछे-पीछे एक कोठरी के अन्दर घुसे जिसमें सदर दरवाजे के अलावे एक दरवाजा और भी था। सब लोग उस दरवाजे में घुसकर दूसरे खण्ड में पहुंचे जहां बीचोंबीच में छोटा-सा चौक था। उसके चारों तरफ दालान और दालानों के बाद बहुत-सी लोहे की सींखचों से बनी हुई जंगलेदार ऐसी कोठरियां थीं जिनके देखने से साफ मालूम होता था, कि यह कैदखाना है और इन कोठरियों में रहने वाले आदमियों को स्वप्न में भी रोशनी नसीब न होती होगी।

इन्हीं सींखचे वाली कोठरियों में से एक दारोगा, दूसरी मायारानी और तीसरी में नकली बलभद्रसिंह कैद था। जब ये लोग यकायक उस कैदखाने में पहुंचे और उजाला हुआ तो तीनों कैदी जो अब तक एक-दूसरे को नहीं देख सकते थे ताज्जुब की निगाहों से उन लोगों को देखने लगे। जिस समय दारोगा की निगाह इन्द्रदेव पर पड़ी उसके दिल में यह खयाल पैदा हुआ कि या तो अब हमको इस कैदखाने से छुट्टी ही मिलेगी या इससे भी ज्यादे दुःख भोगना पड़ेगा।

इन्द्रदेव पहिले मायारानी की तरफ गया जिसका रंग एकदम से पीला पड़ गया था और जिसकी आंखों के सामने मौत की भयानक सूरत हरदम फिरा करती थी। दो-तीन पल तक मायारानी को देखने के बाद इन्द्रदेव उस कोठरी के सामने आया जिसमें नकली बलभद्रसिंह कैद था। उसकी सूरत देखते ही इन्द्रदेव ने कहा, "ऐ मेरे लड़कपन के दोस्त बलभद्रसिंह, मैं तुम्हें सलाम करता हूं। आज ऐसे भयानक कैदखाने में तुम्हें देखकर मुझे बड़ा रंज होता है। तुमने क्या कसूर किया था जो यहां भेजे गए?'

नकली बलभद्रसिंह - मैं कुछ नहीं जानता कि मुझ पर क्या दोष लगाया गया है। मैं तो अपनी लड़कियों से मिलकर खुश हुआ था, मगर अफसोस, राजा साहब ने इन्साफ करने से पहिले ही मुझे कैदखाने भेज दिया।

भैरो - राजा साहब ने तुम्हें कैदखाने में नहीं भेजा बल्कि तुमने खुद कैदखाने में आने का बन्दोबस्त किया। महाराज ने तो मुझे ताकीद की थी कि तुम्हें इज्जत और खातिरदारी के साथ रक्खूं मगर जब तुमने इन्साफ होने के पहिले भागने का उद्योग किया तो लाचार ऐसा करना पड़ा।

इन्द्रदेव - नहीं-नहीं, अगर ये वास्तव में मेरे दोस्त बलभद्रसिंह हैं तो इनके साथ ऐसा न करना चाहिए।

बलभद्र - मैं वास्तव में बलभद्रसिंह हूं, क्या लक्ष्मीदेवी मुझे नहीं पहिचानती जिसके साथ मैं एक ही कैदखाने में कैद था?

इन्द्रदेव - लक्ष्मीदेवी तो खुद तुमसे दुश्मनी कर रही है, वह कहती है कि यह बलभद्रसिंह नहीं हैं बल्कि जैपालसिंह है।

इतना सुनते ही नकली बलभद्रसिंह चौंक उठा और उसके चेहरे पर डर तथा घबराहट की निशानी दिखाई देने लगी। वह समझ गया कि इन्द्रदेव मुझ पर दया करने के लिए नहीं आया बल्कि मुझे सताने के लिए आया है। कुछ देर तक सोचने के बाद उसने इन्द्रदेव से कहा -

बलभद्र - यह बात लक्ष्मीदेवी तो नहीं कह सकती बल्कि तुम स्वयं कहते हो।

इन्द्रदेव - अगर ऐसा भी हो तो क्या हर्ज है तुम इस बात का क्या जवाब देते हो?

बलभद्र - झूठी बात का जो कुछ जवाब दिया जा सकता हो, वही मेरा जवाब है।

इन्द्रदेव - तो क्या तुम जैपालसिंह नहीं हो?

बलभद्र - मैं जानता भी नहीं कि जैपाल किस जानवर का नाम है।

इन्द्रदेव - अच्छा जैपाल नहीं बालेसिंह!

बालेसिंह का नाम सुनकर नकली बलभद्रसिंह फिर घबड़ा गया और मौत की भयानक सूरत उसकी आंखों के सामने दिखाई देने लगी, उसने कुछ जवाब देने का इरादा किया मगर बोल न सका। उसकी ऐसी अवस्था देखकर इन्द्रदेव ने तेजसिंह से कहा, "दारोगा और मायारानी को भी इस कोठरी में लाना चाहिए जिससे मेरी बातों से तीनों बेईमानों के दिल का पता लगे।" यह बात तेजसिंह ने भी पसन्द की और बात की बात में तीनों कैदी एक साथ कर दिए गये और तब इन्द्रदेव ने दारोगा से पूछा, "आपको इस आदमी का नाम बताना होगा जो आपके बगल में कैदियों की तरह बैठा हुआ है।"

दारोगा - मैं इसे नहीं जानता और जब वह स्वयं कह रहा है कि बलभद्रसिंह है तो मुझसे क्यों पूछते हो?

इन्द्रदेव - तो क्या आप बलभद्रसिंह की सूरत-शक्ल भूल गये जिसकी लड़की को आपने मुन्दर के साथ बदलकर हद से ज्यादे दुःख दिया

दारोगा - मुझे उसकी सूरत याद है मगर जब वह मेरे यहां कैद था तब आप ही ने इसे जहर की पुड़िया खिलाई थी जिसके असर से निःसन्देह इसे मर जाना चाहिए था मगर न मालूम क्योंकर बच गया, फिर भी उस जहर की तासीर ने इसका तमाम बदन बिगाड़ दिया और इस लायक न रक्खा कि कोई पहिचाने और बलभद्रसिंह के नाम से इसे पुकारे।

दारोगा की बातें सुनकर इन्द्रदेव की आंखें मारे क्रोध के लाल हो गईं और उसने दांत पीसकर कहा -

इन्द्रदेव - कम्बख्त बेईमान! तू चाहता है कि अपने साथ मुझे भी लपेटे! मगर ऐसा नहीं हो सकता, तेरी इन बातों से लक्ष्मीदेवी और राजा वीरेन्द्रसिंह का दिल मुझसे नहीं फिर सकता। इसका सबब अगर तू जानता तो ऐसी बातें कदापि न कहता। खैर वह मैं तुझसे बयान करता हूं, सुन, तेरे दिये हुए जहर से मैंने ही बलभद्रसिंह की जान बचाई थी, और अगर तू बलभद्रसिंह को किसी दूसरी जगह न छिपा दिए होता या उसका हाल मुझे मालूम हो जाता तो बेशक मैं उसे भी तेरे कैदखाने से निकाल लेता, मगर फिर भी वह शख्स मैं ही हूं जिसने लक्ष्मीदेवी को तुझ बेईमान और विश्वासघाती के पंजे से छुड़ाकर वर्षों अपने घर में इस तरह रक्खा कि तुझे कुछ भी मालूम न हुआ और मेरे ही सबब से लक्ष्मीदेवी आज इस लायक हुई कि तुझसे अपना बदला ले।

दारोगा - मगर ऐसा नहीं हो सकता।

यद्यपि इन्द्रदेव की बात सुनकर आश्चर्य और डर से दारोगा के रोंगटे खड़े हो गये मगर फिर भी न मालूम किस भरोसे पर वह बोल उठा कि, "मगर ऐसा नहीं हो सकता" और उसके इस कहने ने सभी को आश्चर्य में डाल दिया।

इन्द्रदेव - (दारोगा से) मालूम होता है कि तेरा घमण्ड अभी टूटा नहीं, और तुझे अब भी किसी की मदद पहुंचने और अपने बचने की आशा है।

दारोगा - बेशक ऐसा ही है।

अब इन्द्रदेव अपने क्रोध को बर्दाश्त न कर सका और उसने कोठरी के अन्दर घुसकर दारोगा के बाएं गाल पर ऐसी चपत लगाई कि वह तिलमिलाकर जमीन पर लुढ़क गया क्योंकि हथकड़ी और बेड़ी के कारण उसके हाथ और पैर मजबूर हो रहे थे। इसके बाद इन्द्रदेव ने नकली बलभद्रसिंह का बदन नंगा कर डाला और अपने कमर से

चमड़े का तस्मा खोलकर मारना और पूछना शुरू किया, "बता तू जैपाल है या नहीं और बलभद्रसिंह कहां है?'

यद्यपि तस्मे की मार खाकर नकली बलभद्रसिंह बिना जल की मछली की तरह तड़पने लगा मगर मुंह से सिवाय 'हाय' के कुछ भी न बोला। इन्द्रदेव उसे और भी मारा चाहता था मगर इसी समय एक गम्भीर आवाज ने उसका हाथ रोक दिया और वह ध्यान देकर सुनने लगा, आवाज यह थी -

"होशियार! होशियार!!"

इस आवाज ने केवल इन्द्रदेव ही को नहीं बल्कि उन सभों ही को चौंका दिया जो वहां मौजूद थे। इन्द्रदेव कैदखाने की कोठरी में से बाहर निकल आया और छत की तरफ सिर उठाकर देखने लगा जिधर से आवाज आई थी। मशाल की रोशनी बखूबी हो रही थी जिससे छत का एक सूराख जिसमें आदमी का सिर बखूबी जा सकता था साफ दिखाई पड़ता था। सभों को विश्वास हो गया कि वह आवाज इसी में से आई है।

दो-चार पल तक सभी ने राह देखी मगर फिर आवाज सुनाई न दी। आखिर इन्द्रदेव ने पुकारकर कहा, "अभी कौन बोला था?'

फिर आवाज आई - "हम!"

इन्द्रदेव - तुमने क्या कहा था

आवाज - होशियार! होशियार!!

इन्द्रदेव - क्यों?

आवाज - दुश्मन आ पहुंचा और तुम लोग मुसीबत में फंसा चाहते हो।

इन्द्रदेव - तुम कौन हो?

आवाज - कोई तुम लोगों का हिती।

इन्द्रदेव - कैसे समझा जाय कि तुम हम लोंगों के हिती हो और जो कुछ कहते हो वह सच है?

आवाज - हिती होने का सबूत इस समय देना कठिन है मगर इस बात का सबूत मिल सकता है कि हमने जो कुछ कहा है वह सच है।

इन्द्रदेव - इसका क्या सबूत है?

आवाज - बस इतना ही कि इस तहखाने से निकलने के सब दरवाजे बन्द हो गये और अब आप लोग बाहर नहीं जा सकते।

अब तो सभों का कलेजा दहल उठा और आश्चर्य से एक - दूसरे का मुंह देखने लगे। तेजसिंह ने देवीसिंह और भैरोसिंह की तरफ देखा और वे दोनों उसी समय इस बात का पता लगाने चले गये कि तहखाने के दरवाजे वास्तव में बन्द हो गए या नहीं, इसके बाद इन्द्रदेव ने फिर छत की तरफ मुंह करके कहा, "हां तो क्या तुम बता सकते हो कि वे लोग कौन हैं जिन्होंने इस तहखाने में हम लोगों को घेरने का इरादा किया है?'

आवाज - हां, बता सकते हैं।

इन्द्रदेव - अच्छा उनके नाम बताओ।

आवाज - कमलिनी के तिलिस्मी मकान से छूटकर भागे शिवदत्त, माधवी और मनोरमा तथा उन्हीं तीनों की मदद से छूटा हुआ दिग्विजयसिंह का लड़ला कल्याणसिंह जो इस तिलिस्मी तहखाने का हाल उतना ही जानता है जितना उसका बाप जानता था।

इन्द्रदेव - वह तो चुनार में कैद था।

आवाज - हां कैद था मगर छुड़ाया गया जैसा कि मैंने कहा।

इन्द्रदेव - तो क्या वे लोग हम सभों को नुकसान पहुंचा सकते हैं?

आवाज - सो तो तुम्हीं लोग जानो, मैंने तो तुम लोगों को होशियार कर दिया, अब जिस तरह अपने को बचा सको बचाओ।

इन्द्रदेव - (कुछ सोचकर) उन चारों के साथ कोई और भी है?

आवाज - हां, एक हजार के लगभग फौज भी इसी तहखाने की किसी गुप्त राह से किले के अन्दर घुसकर अपना दखल जमाया चाहती है।

इन्द्रदेव - इतनी मदद उन सभों को कहां से मिली?

आवाज - इसी कम्बख्त मायारानी की बदौलत।

इन्द्रदेव - क्या तुम भी उन्हीं लोगों के साथ हो?

आवाज - नहीं।

इन्द्रदेव - तब तुम कौन हो?

आवाज - एक दफे तो कह चुका कि तुम्हारा कोई हिती हूं।

इन्द्रदेव - अगर हिती हो तो हम लोगों की कुछ मदद भी कर सकते हो!

आवाज - कुछ भी नहीं।

इन्द्रदेव - क्यों?

आवाज - मजबूरी है।

इन्द्रदेव - मजबूरी कैसी!

आवाज - वैसी ही।

इन्द्रदेव - क्या तुम हम लोगों की मदद किए बिना ही तहखाने के बाहर चले जाओगे।

आवाज - नहीं क्योंकि रास्ता बन्द है।

इतना सुनकर इन्द्रदेव चुप हो गया और कुछ देर सोचता रहा, इसके बाद राजा वीरेन्द्रसिंह का इशारा पाकर फिर बातचीत करने लगा।

इन्द्रदेव - तुम अपना नाम क्यों नहीं बताते?

आवाज - व्यर्थ समझकर।

इन्द्रदेव - क्या हम लोगों के पास भी नहीं आ सकते?

आवाज - नहीं।

इन्द्रदेव - क्यों?

आवाज - रास्ता नहीं है।

इन्द्रदेव - तो क्या तुम यहां से निकलकर बाहर भी नहीं जा सकते?

इस बात का जवाब कुछ भी न मिला, इन्द्रदेव ने पुनः पूछा मगर फिर भी जवाब न मिला। इतने ही में छत पर धमधमाहट की आवाज इस तरह आने लगी जैसे पचासों आदमी चारों तरफ दौड़ते उछलते-कूदते हों। उसी समय इन्द्रदेव ने राजा वीरेन्द्रसिंह की तरफ देखकर कहा, "अब मुझे निश्चय हो गया कि इस गुप्त मनुष्य का कहना ठीक है और इस छत के ऊपर वाले खंड में ताज्जुब नहीं कि दुश्मन आ गये हों और यह उन्हीं के पैरों की धमधमाहट हो।" राजा वीरेन्द्रसिंह इन्द्रदेव की बात का कुछ जवाब दिया ही चाहते थे कि उसी मोखे में से जिसमें से गुप्त मनुष्य के बात-चीत की आवाज आ रही थी, भिन्न-भिन्न और बहुत से आदमियों के बोलने की आवाजें आने लगीं। साफ सुनाई देता था कि बहुत से आदमी आपस में लड़-भिड़ रहे हैं और तरह-तरह की बातें कर रहे हैं।

"कहां है कोई तो नहीं! जरूर है! यही है! पकड़ो! पकड़ो! तेरी ऐसी की तैसी, तू क्या हमें पकड़ेगा नहीं अब तू बच के कहां जा सकता है!" इत्यादि आवाजें कुछ देर तक सुनाई देती रहीं। और इसके बाद उसी मोखे में से बिजली की तरह चमक दिखाई देने लगी। उसी समय "हाय रे, यह क्या, जले-जले, मरे-मरे, देव-देव, भूत है भूत, देवता, काल है काल, अग्निदेव है अग्निदेव, कुछ नहीं जाने दो, जाने दो, हम नहीं, हम नहीं!" इत्यादि की आवाजें सुनाई देने लगीं, जिससे बेचारी किशोरी और कामिनी का कोमल कलेजा दहलने लगा, और थरथर कांपने लगीं। राजा वीरेन्द्रसिंह और तेजसिंह वगैरह भी घबड़ाकर सोचने लगे कि अब क्या करना चाहिए।

इन्द्रदेव - दुश्मनों के आने में कोई शक नहीं!

वीरेन्द्र - खैर क्या हर्ज है, लड़ाई से हम लोग डरते नहीं, अगर कुछ खयाल है तो केवल इतना ही कि तहखाने में पड़े रहकर बेबसी की हालत में जान दे देनी पड़े क्योंकि दरवाजों के बन्द होने की खबर सुनाई देती है। अगर दुश्मन लोग आ गये तब कोई हर्ज नहीं, क्योंकि जिस राह से वे लोग आवेंगे वही राह हम लोगों के निकल जाने के लिए भी होगी हां पता लगाने में जो कुछ विलम्ब हो। (रुककर) लो भैरोसिंह और देवीसिंह भी आ गये! (दोनों ऐयारों से) कहो क्या खबर है?

देवी - दरवाजे बन्द हैं।

भैरो - किले के बाहर निकल जाने वाला दरवाजा भी बन्द है।

तेज - खैर कोई चिन्ता नहीं, अब तो दुश्मन का आ जाना ही हमारे लिए बेहतर है।

इन्द्रदेव - कहीं ऐसा न हो कि हम लोग तो दुश्मनों से लड़ने के फेर में रह जायें और दुश्मन लोग तीनों कैदियों को छुड़ा ले जायं, अस्तु पहिले कैदियों का बन्दोबस्त करना चाहिए और इससे भी ज्यादे जरूरी (किशोरी, कामिनी इत्यादि की तरफ इशारा करके) इन लड़कियों की हिफाजत है।

कमलिनी - मुझे छोड़कर और सभी की फिक्र कीजिये क्योंकि तिलिस्मी खंजर अपने पास रखकर भी छिपे रहना मैं पसन्द नहीं करती, मैं लड़ूंगी और खंजर की करामात देखूंगी।

वीरेन्द्र - नहीं-नहीं, हम लोगों के रहते हमारी लड़कियों को हौसला करने की जरूरत नहीं है।

इन्द्रदेव - कोई हर्ज नहीं, आप कमलिनी के लिए चिन्ता न करें, मैं खुशी से देखा चाहता हूं कि वर्षों मेहनत करके मैंने जो कुछ विद्या इसे सिखाई है उससे यह कहां तक फायदा उठा सकती है, खैर देखिये मैं सभों का बन्दोबस्त करता हूं।

इतना कहकर इन्द्रदेव ने ऐयारों की तरफ देखा और कहा, "इन कैदियों की आंखों पर शीघ्र पट्टी बांधिये।" सुनने के साथ ही बिना कुछ सबब पूछे भैरोसिंह, तारासिंह और देवीसिंह जंगले के अन्दर चले गये और बात की बात में तीनों कैदियों की आंखों पर पट्टियां बांध दीं। इसके बाद इन्द्रदेव ने छत की तरफ देखा जहां लोहे की बहुत-सी कड़ियां लटक रही थीं। उन कड़ियों में से एक कड़ी को इन्द्रदेव ने उछलकर पकड़ लिया और लटकते ही हुए तीन-चार झटके दिये जिससे वह कड़ी नीचे की तरफ खिंच गई और इन्द्रदेव का पैर जमीन के साथ लग गया। वह कड़ी लोहे की जंजीर के साथ बंधी हुई थी जो खेंचने के साथ ही नीचे तक खिंच आई। जंजीर खिंच जाने से एक कोठरी का दरवाजा ऊपर की तरफ चढ़ गया जैसे पुल का तख्ता जंजीर खेंचने से ऊपर की तरफ चढ़ जाता है। कोठरी उसी दालान में दीवार के साथ इस ढंग से बनी हुई थी कि दरवाजा बन्द रहने की हालत में इस बात का कुछ भी पता नहीं लग सकता था कि यहां पर कोठरी है।

जब कोठरी का दरवाजा खुल गया तब इन्द्रदेव ने कमलिनी को छोड़ के बाकी औरतों को उस कोठरी के अन्दर कर देने के लिए तेजसिंह से कहा और तेजसिंह ने ऐसा ही

किया। जब सब औरतें कोठरी के अन्दर चली गईं तब इन्द्रदेव ने हाथ से कड़ी छोड़ दी। तुरन्त ही उस कोठरी का दरवाजा बन्द हो गया और वह कड़ी छत के साथ इस तरह चिपक गई जैसे छत में कोई चीज लटकाने के लिये जड़ी हो।

इसके बाद इन्द्रदेव ने तीनों कैदियों को भी वहां से निकाल ले जाकर किसी दूसरी जगह बन्द कर देने का इरादा किया मगर ऐसा करने का समय न मिला क्योंकि उसी समय पुनः "सावधान-सावधान!" की आवाज आई और कैदखाने वाली कोठरी के बाहर बहुत से आदमियों के आ पहुंचने की आहट मिली अतएव हमारे बहादुर लोग कमलिनी के सहित बाहर निकल आये। राजा वीरेन्द्रसिंह और तेजसिंह ने म्यान से तलवारें निकाल लीं, कमलिनी ने तिलिस्मी खंजर सम्हाला, ऐयारों ने कमन्द और खंजर को दुरुस्त किया, और इन्द्रदेव ने अपने बटुए में से छोटे-छोटे चार गेंद निकाले और लड़ने के लिए हर तरह से मुस्तैद होकर सभी के साथ कोठरी के बाहर निकल आया।

राजा वीरेन्द्रसिंह, उनके ऐयारों और इन्द्रदेव को विश्वास हो गया था कि उस गुप्त मनुष्य ने जो कुछ कहा वह ठीक है और शिवदत्त, माधवी और मनोरमा के साथ ही साथ दिग्विजयसिंह का लड़का कल्याणसिंह भी अपने मददगारों को लिये हुए इसी तहखाने में दिखाई देगा, इसलिए इन्द्रदेव और ऐयार लोग इस बात की फिक्र में थे कि जिस तरह हो सके चारों ही को नहीं तो कल्याणसिंह और शिवदत्त को तो जरूर ही पकड़ लेना चाहिए परन्तु वे लोग ऐसा न कर सके, क्योंकि कोठरी के बाहर निकलते ही जिन लोगों ने उन पर वार किया था वे सब-के-सब अपने चेहरों पर नकाब डाले हुए थे और इसलिए उनमें से अपने मतलब के आदमियों को पहिचानना बड़ा कठिन था। इन्द्रदेव ने जल्दी के साथ कमलिनी से कहा, "तू हम लोगों के पीछे इसी दरवाजे के बीच में खड़ी रह, जब कोई तुझ पर हमला करे या इस कैदखाने के अन्दर जाने लगे तो तिलिस्मी खंजर से उसको रोकियो" और कमलिनी ने ऐसा ही किया।

जब हमारे बहादुर लोग कैदखाने वाली कोठरी से बाहर निकले तो देखा कि उन पर हमला करने वाले सैकड़ों नकाबपोश हाथों में नंगी तलवारें लिए आ पहुंचे और 'मार-मार' कहकर तलवारें चलाने लगे तथा हमारे बहादुर लोग भी जो यद्यपि गिनती में उनसे बहुत कम थे, दुश्मनों के वारों का जवाब देने और अपने वार करने लगे। हमारे दोनों ऐयारों ने मशालें जमीन पर फेंक दीं क्योंकि दुश्मनों के साथ बहुत-सी मशालें थीं जिनकी रोशनी में दुश्मनों के साथ ही साथ हमारे बहादुरों का काम भी अच्छी तरह चल सकता था।

इसमें कोई शक नहीं कि दुश्मनों ने जी तोड़कर लड़ाई की और राजा वीरेन्द्रसिंह वगैरह को गिरफ्तार करने का बहुत उद्योग किया मगर कुछ न कर सके और हमारे बहादुर वीरेन्द्रसिंह तथा आफत के परकाले उनके ऐयारों ने ऐसी बहादुरी दिखाई कि दुश्मनों के छक्के छूट गये। राजा वीरेन्द्रसिंह की न रुकने वाली तलवार ने तीस आदमियों को उस लोक का रास्ता दिखाया, ऐयारों ने कमन्दों की उलझन में डालकर पचासों को जमीन पर सुलाया जो अपने ही साथियों के पैरों तले रौंदे जाकर बेकाम हो गये। इन्द्रदेव ने जो चार गेंद निकाले थे उन्होंने तो अजब ही तमाशा दिखाया। इन्द्रदेव ने उन गेंदों को बारी-बारी से दुश्मनों के बीच में फेंका जो ठेस लगने के साथ ही आवाज देकर फट गए और उनमें से निकले हुए आग के शोलों ने बहुतों को जलाया और बेकाम किया। जब दुश्मनों ने देखा कि हम राजा वीरेन्द्रसिंह और उनके साथियों का कुछ नहीं कर सके और उन्होंने हमारे बहुत से साथियों को मारा और बेकाम कर दिया, तो वे लोग भागने की फिक्र में लगे मगर वहां से भाग जाना भी असम्भव था, क्योंकि वहां से निकल भागने का रास्ता उन्हें मालूम न था। कल्याणसिंह जिस राह से उन सभों को इस तहखाने में लाया था उसे बन्द न भी कर देता तो उस घूमघुमौवे और पेचीले रास्ते का पता लगाकर निकल जाना कठिन था।

आधी घड़ी से ज्यादे देर तक मौत का बाजार गर्म रहा। दुश्मन लोग मारे जाते थे और ऐयारों को सरदारों के गिरफ्तार करने की फिक्र थी, इसी बीच में तहखाने के ऊपरी हिस्से से किसी औरत के चिल्लाने की आवाज आने लगी और सभों का ध्यान उसी तरफ चला गया। तेजसिंह ने भी उसे कान लगाकर सुना और कहा, "ठीक किशोरी की आवाज मालूम पड़ती है!"

"हाय रे, मुझे बचाओ, अब मेरी जान न बचेगी, दोहाई राजा वीरेन्द्रसिंह की!"

इस आवाज ने केवल तेजसिंह ही को नहीं बल्कि राजा वीरेन्द्रसिंह को भी परेशान कर दिया। वह ध्यान देकर उस आवाज को सुनने लगे। इसी बीच में एक दूसरे आदमी की आवाज भी उसी तरफ से आने लगी। राजा वीरेन्द्रसिंह और उनके साथियों ने पहिचान लिया कि वह उसी की आवाज है जो कैदखाने की कोठरी में कुछ देर पहिले गुप्त रीति से बातें कर रहा था और जिसने दुश्मनों के आने की खबर दी थी। वह आवाज यह थी -

"होशियार-होशियार, देखो यह चाण्डाल बेचारी किशोरी को पकड़े लिये जाता है। हाय, बेचारी किशोरी को बचाने की फिक्र करो! रह तो जा नालायक, पहिले मेरा मुकाबला कर ले!!"

इस आवाज ने राजा वीरेन्द्रसिंह, तेजसिंह, इन्द्रदेव और उनके साथियों को बहुत ही परेशान कर दिया और वे लोग घबड़ाकर चारों तरफ देखने तथा सोचने लगे कि अब क्या करना चाहिए।

बयान - 12

हम ऊपर लिख आये हैं कि इन्द्रदेव ने भूतनाथ को अपने मकान से बाहर जाने न दिया और अपने आदमियों को यह ताकीद करके कि भूतनाथ को हिफाजत और खातिरदारी के साथ रक्खें रोहतासगढ़ की तरफ रवाना हो गया।

यद्यपि भूतनाथ इन्द्रदेव के मकान में रोक लिया गया और वह भी उस मकान से बाहर जाने का रास्ता न जानने के कारण लाचार और चुप हो रहा मगर समय और आवश्यकता ने वहां उसे चुपचाप बैठने न दिया और मकान से बाहर निकलने का मौका उसे मिल ही गया।

जब इन्द्रदेव रोहतासगढ़ की तरफ रवाना हो गया उसके दूसरे दिन दोपहर के समय सर्यूसिंह जो इन्द्रदेव का बड़ा विश्वासी ऐयार था भूतनाथ के पास आया और बोला, "क्यों भूतनाथ, तुम चुपचाप बैठे क्या सोच रहे हो?'

भूत - बस अपनी बदनसीबी पर रोता और झक मारता हूं, मगर इसके साथ ही इस बात को सोच रहा हूं कि आदमी को दुनिया में किस ढंग से रहना चाहिए।

सर्यू - क्या तुम अपने को बदनसीब समझते हो?

भूत - क्यों नहीं! तुम जानते हो कि वर्षों से मैं राजा वीरेन्द्रसिंह का काम कैसी ईमानदारी और नेकनीयती के साथ कर रहा हूं, और क्या यह बात तुमसे छिपी हुई है कि उस सेवा का बदला आज मुझे क्या मिल रहा है?

सर्यू - (पास बैठकर) मैं सब-कुछ जानता हूं मगर भूतनाथ, मैं फिर भी यह कहने से बाज न आऊंगा कि आदमी को कभी हताश न होना चाहिए और हमेशा बुरे कामों की तरफ से अपने दिल को रोककर नेक काम में तन-मन-धन से लगे रहना चाहिए। ऐसा करने वाला निःसन्देह सुख भोगता है चाहे बीच-बीच में उसे थोड़ी-बहुत तकलीफ भी क्यों न उठानी पड़े, अस्तु आजकल के दुःखों से तुम हताश मत हो जाओ और राजा वीरेन्द्रसिंह तथा इनकी तरह सज्जन लोगों के साथ नेकी करने से अपने दिल को मत रोको। तुम तो ऐयार हो और ऐयारों में भी नामी ऐयार, फिर भी दो-चार

दुष्टों की अनोखी कार्रवाइयों से आ पड़ने वाली आफतों को न सहकर उदास हो जाओ तो बड़े आश्चर्य की बात है।

भूत - नहीं मेरे दोस्त मैं हताश होने वाला आदमी नहीं हूं, मैं तो केवल समय का हेर-फेर देखकर अफसोस कर रहा हूं। निःसंदेह मुझसे दो-एक काम बुरे हो गये और उसका बदला भी मैं पा चुका हूं, मगर फिर भी मेरा दिल यह कहने से बाज नहीं आता कि तेरे माथे से कलंक का टीका अभी तक साफ नहीं हुआ, अतएव तू नेकी करता जा और भूलता जा।

सर्यू - शाबाश, मैं केवल तुम्हीं को नहीं बल्कि तुम्हारे दिल को भी अच्छी तरह जानता हूं और वे बातें भी मुझसे छिपी हुई नहीं हैं जिनका इलजाम तुम पर लगाया गया है। यद्यपि मैं एक ऐसे सरदार का ऐयार हूं जो किसी के नेकबदन से सरोकार नहीं रखता और इस स्थान को देखने वाला कह सकता है कि वह दुनिया के पर्दे के बाहर रहता है मगर फिर भी मैं काम ज्यादे न होने के सबब से घूमता-फिरता और नामी ऐयारों की कार्रवाइयों को देखा-सुना करता हूं और यही सबब है कि मैं उन भेदों को भी कुछ जानता हूं जिसका इलजाम तुम पर लगाया गया है।

भूत - (आश्चर्य से) क्या तुम उन भेदों को जानते हो?

सर्यू - बखूबी तो नहीं मगर कुछ-कुछ।

भूत - तो मेरे दोस्त, तुम मेरी मदद क्यों नहीं करते तुम मुझे इस आफत से क्यों नहीं छुड़ाते। आखिर हम-तुम एक ही पाठशाला के पढ़े-लिखे हैं, क्या लड़कपन की दोस्ती पर ध्यान देते तुम्हें शर्म आती है या क्या तुम इस लायक नहीं हो?

सर्यू - (हंसकर) नहीं-नहीं, ऐसा खयाल न करो, मैं तुम्हारी मदद जरूर करूंगा, अभी तक तो तुम्हें किसी से मदद लेने की आवश्यकता भी नहीं पड़ी थी। और जब आवश्यकता आ पड़ी है तो मदद करने के लिए हाजिर भी हो गया हूं।

भूत - (मुस्कुराकर) तब तो मुझे खुश होना चाहिए, मगर जब तक तुम्हारा मालिक रोहतासगढ़ से लौटकर न आ जाय तब तक हम लोग कुछ भी न कर सकेंगे।

सर्यू - क्यों न कर सकेंगे?

भूत - इसलिए कि तुम्हारा मालिक मुझे यहां कैद कर गया है। मैं इसे कैद ही समझता हूं जबकि यहां से बाहर निकलने की आज्ञा नहीं है।

सर्यू - यह कोई बात नहीं है, अगर जरूरत आ पड़े तो मैं तुम्हें इस मकान के बाहर कर दूंगा चाहे बाहर होने का रास्ता अपने मालिक के नियमानुसार न बताऊं।

भूत - (प्रसन्नता से हाथ ऊपर उठाकर) ईश्वर तू धन्य है। अब आशालता ने जिसमें सुन्दर और सुगन्धित फूल लगे हुए हैं, मुझे फिर घेर लिया। (सर्यू से) अच्छा दोस्त, तो अब बताओ कि मुझे क्या करना चाहिए?

सर्यू - सबके पहिले मनोरमा को अपने कब्जे में लाना चाहिए।

भूत - (कुछ सोचकर) ठीक कहते हो, मेरी भी एक दफे यही इच्छा हुई थी मगर तुम इस बात को नहीं जानते कि शिवदत्त, मनोरमा और...।

सर्यू - (बात काटकर) मैं खूब जानता हूं कि शिवदत्त, माधवी और मनोरमा को कमलिनी के कैदखाने से निकल भागने का मौका मिला और वे लोग भाए गए।

भूत - तब?

सर्यू - मगर आज एक खबर ऐसी सुनने में आई है जो आश्चर्य और उत्कंठा बढ़ाने वाली है और हम लोगों को चुपचाप बैठे रहने की आज्ञा नहीं देती।

भूत - वह क्या?

सर्यू - यही कि कम्बख्त मायारानी की मदद पाकर शिवदत्त, माधवी और मनोरमा ने जो पहिले ही से अमीर थे, अपनी ताकत बहुत बढ़ा ली और सबसे पहिले उन्होंने यह काम किया कि राजा दिग्विजयसिंह के लड़के कल्याणसिंह को कैद से छुड़ा लिया जिसकी खबर राजा वीरेन्द्रसिंह को अभी तक नहीं हुई और यह भी तुम जानते ही हो कि रोहतासगढ़ के तहखाने का भेद कल्याणसिंह उतना ही जानता है जितना उसका बाप जानता था।

भूत - बेशक-बेशक, अच्छा तब?

सर्यू - अब उन लोगों ने यह सुनकर कि राजा वीरेन्द्रसिंह, तेजसिंह इत्यादि ऐयार तथा किशोरी, कामिनी, कमलिनी, कमला और लाडिली वगैरह सभी रोहतासगढ़ में मौजूद हैं, गुप्त रीति से रोहतासगढ़ पहुंचने का इरादा किया है -

भूत - बेशक कल्याणसिंह उन लोगों को तहखाने की गुप्त राह से किले के अन्दर ले जा सकता है और इसका नतीजा निःसन्देह बहुत बुरा होगा।

सर्यू - मैं भी यही सोचता हूं, तिस पर मजा यह है कि वे लोग अकेले नहीं हैं बल्कि हजार फौजी सिपाहियों को भी उन लोगों ने अपना साथी बनाया है।

भूत - और रोहतासगढ़ के तहखाने में इससे दूने आदमी भी हों तो सहज ही में समा सकते हैं, मगर मेरे दोस्त, यह खबर तुमने कहां से और क्योंकर पाई?

सर्यू - मेरे चेलों ने जो प्रायः बाहर घूमा करते हैं यह खबर मुझे सुनाई है।

भूत - तो क्या यह मालूम नहीं हुआ कि शिवदत्त, माधवी, मनोरमा और कल्याणसिंह तथा उनके साथी किस राह से जा रहे हैं और कहां हैं?

सर्यू - हां यह भी मालूम हुआ है, वे लोग बराबर घाटी की राह से और जंगल ही जंगल जा रहे हैं।

भूत - (कुछ देर तक गौर करके) मौका तो अच्छा है!

सर्यू - बेशक अच्छा है।

भूत - तब?

सर्यू - चलो हम-तुम दोनों मिलकर कुछ करें!

भूत - मैं तैयार हूं, मगर इस बात को सोच लो कि ऐसा करने पर तुम्हारा मालिक रंज तो न होगा!

सर्यू - सब सोचा-समझा है, हमारा मालिक भी रोहतासगढ़ ही गया हुआ है और वह भी राजा वीरेन्द्रसिंह का पक्षपाती है।

भूत - खैर तो अब विलम्ब करना अपने अमूल्य समय को नष्ट करना है (ऊंची सांस लेकर) ईश्वर न करे शिवदत्त के हाथ कहीं किशोरी लग जाय, अगर ऐसा हुआ तो अबकी दफे वह बेचारी कदापि न बचेगी।

सर्यू - मैं भी यही सोच रहा हूं, अच्छा तो अब तैयार हो जाओ, मगर मैं नियमानुसार तुम्हारी आंखों पर पट्टी बांधकर बाहर ले जाऊंगा।

भूत - कोई चिन्ता नहीं, हां यह तो कहो कि मेरे ऐयारी के बटुए में कई मसालों की कमी हो गई है, क्या तुम उसे पूरा कर सकते हो

सर्यू - हां, हां, जिन-जिन चीजों की जरूरत हो ले लो, यहां किसी बात की कमी नहीं है।

बयान - 13

दोपहर दिन का समय है। गर्म-गर्म हवा के झपेटों से उड़ी हुई जमीन की मिट्टी केवल आसमान ही को गंदला नहीं कर रही है बल्कि पथिकों के शरीरों को भी अपना-सा करती और आंखों को इतना खुलने नहीं देती है जिससे रास्ते को अच्छी तरह देखकर तेजी के साथ चलें और किसी घने पेड़ के नीचे पहुंचकर अपने थके-मांदे शरीर को आराम दें। ऐसे ही समय भूतनाथ, सर्यूसिंह और सर्यूसिंह का एक चेला आंखों को मिट्टी और गर्द से बचाने के लिए अपने-अपने चेहरों पर बारीक कपड़ा डाले रोहतासगढ़ की तरफ तेजी के साथ कदम बढ़ाये चले जा रहे हैं। हवा के झपेटे आगे बढ़ने से रोक-टोक करते हैं मगर ये तीनों आदमी धुन के पक्के इस तरह चले जा रहे हैं कि बात तक नहीं करते, हां उस सामने के घने जंगल की तरफ उनका ध्यान अवश्य है जहां आधी घड़ी के अन्दर ही पहुंचकर सफर की हरारत मिटा सकते हैं। उन तीनों ने अपनी चाल और भी तेज की और थोड़ी ही देर बाद उसी जंगल में एक सघन पेड़ के नीचे बैठकर थकावट मिटाते दिखाई देने लगे।

सर्यू - (रूमाल से मुंह पोंछकर) यद्यपि आज का सफर दुःखदायी हुआ परन्तु हम लोग ठीक समय पर ठिकाने पहुंच गये।

भूत - अगर दुश्मनों का डेरा अभी तक इसी जंगल में हो तो मैं भी ऐसा ही कहूंगा।

सर्यू - बेशक वे लोग अभी तक इसी जंगल में होंगे क्योंकि मेरे शागिर्द ने उनके दो दिन तक यहां ठहरने की खबर दी थी और वह जासूसी का काम बहुत अच्छे ढंग से करता है।

भूत - तब हम लोगों को कोई ऐसा ठिकाना ढूंढ़ना चाहिए जहां पानी हो और अपना भेष अच्छी तरह बदल सकें।

सर्यू - जरा-सा और आराम कर लें तब उठें।

भूत - क्या हर्ज है।

थोड़ी देर तक ये तीनों उसी पेड़ के नीचे बैठे बातचीत करते रहे और इसके बाद उठकर ऐसे ठिकाने पहुंचे जहां साफ जल का सुन्दर चश्मा बह रहा था। उसी चश्मे के जल से

बदन साफ करने के बाद तीनों ऐयारों ने आपस में कुछ सलाह करके अपनी सूरतें बदलीं और वहां से उठकर दुश्मनों की टोह में इधर-उधर घूमने लगे तथा संध्या होने के पहिले ही उन लोगों का पता लगा लिया जो दो सौ आदमियों के साथ उसी जंगल में टिके हुए थे। जब रात हुई और अंधकार ने अपना दखल चारों तरफ अच्छी तरह जमा लिया तो ये तीनों उस लश्कर की तरफ रवाना हुए।

शिवदत्त और कल्याणसिंह तथा उनके साथियों ने जंगल के मध्य में डेरा जमाया हुआ था। खेमा या कनात का नामनिशान न था, बड़े-बड़े और घने पेड़ों के नीचे शिवदत्त और कल्याणसिंह मामूली बिछावन पर बैठे हुए बातें कर रहे थे और उनसे थोड़ी ही दूर पर उनके संगी-साथी और सिपाही लोग अपने-अपने काम तथा रसोई बनाने की फिक्र में लगे हुए थे। जिस पेड़ के नीचे शिवदत्त और कल्याणसिंह थे उससे तीस या चालीस गज की दूरी पर दो पालकियां पेड़ों की झुरमुट में अन्दर रक्खी हुई थीं और उनमें माधवी तथा मनोरमा विराज रही थीं और इन्हीं के पीछे की तरफ बहुत से घोड़े पेड़ों के साथ बंधे हुए घास चर रहे थे।

शिवदत्त और कल्याणसिंह एकान्त में बैठे बातचीत कर रहे थे। उनसे थोड़ी ही दूर पर एक जवान जिसका नाम धन्नूसिंह था, हाथ में नंगी तलवार लिये हुए पहरा दे रहा था और यही जवान उन दो सौ सिपाहियों का अफसर था जो इस समय जंगल में मौजूद थे। रात हो जाने के कारण कहीं - कहीं पर रोशनी हो रही और एक लालटेन उस जगह जल रही थी जहां शिवदत्त और कल्याणसिंह बैठे हुए आपस में बातें कर रहे थे।

शिवदत्त - हमारी फौज ठिकाने पहुंच गई होगी।

कल्याण - बेशक।

शिवदत्त - क्या इतने आदमियों का रोहतासगढ़ तहखाने के अन्दर समा जाना सम्भव है?

कल्याण - (हंसकर) इसके दूने आदमी भी अगर हों तो उस तहखाने में अंट सकते हैं।

शिवदत्त - अच्छा तो उस तहखाने में घुसने के बाद क्या-क्या करना होगा?

कल्याण - उस तहखाने के अन्दर चार कैदखाने हैं, पहिले इन कैदखानों को देखेंगे, अगर उनमें कोई कैदी होगा तो उसे छुड़ाकर अपना साथी बनावेंगे। मायारानी और

उसका दारोगा भी उन्हीं कैदखानों में से किसी में जरूर होंगे और छूट जाने पर उन दोनों से बड़ी मदद मिलेगी।

शिवदत्त - बेशक बड़ी मदद मिलेगी, अच्छा तब?

कल्याण - अगर उस समय वीरेन्द्रसिंह वगैरह तहखाने की सैर करते हुए मिल जायेंगे तो मैं उन लोगों के बाहर निकलने का रास्ता बन्द करके फंसाने की फिक्र करूंगा तथा आप फौजी सिपाहियों को लेकर किले के अन्दर चले जाइयेगा और मर्दानगी के साथ किले में अपना दखल कर दीजियेगा।

शिवदत्त - ठीक है मगर यह कब संभव है कि उस समय वीरेन्द्रसिंह वगैरह तहखाने की सैर करते हुए हम लोगों को मिल जायं।

कल्याण - अगर न मिलेंगे तो न सही, उस अवस्था में हम लोग एक साथ किले के अन्दर अपना दखल जमावेंगे और वीरेन्द्रसिंह तथा उनके ऐयारों को गिरफ्तार कर लेंगे। यह तो आप सुन ही चुके हैं कि इस समय रोहतासगढ़ किले में फौजी सिपाही पांच सौ से ज्यादे नहीं हैं, सो भी बेफिक्र बैठे होंगे, और हम लोग यकायक हर तरह से तैयार जा पहुंचेंगे। मगर मेरा दिल यह गवाही देता है कि वीरेन्द्रसिंह वगैरह को हम लोग तहखाने में सैर करते हुए अवश्य देखेंगे क्योंकि वीरेन्द्रसिंह ने जहां तक सुना गया है, अभी तक तहखाने की सैर नहीं की, अबकी दफे जो वह वहां गए हैं तो जरूर तहखाने की सैर करेंगे और तहखाने की सैर दो-एक दिन में नहीं हो सकती, आठ-दस दिन अवश्य लगेंगे और सैर करने का समय भी रात ही को ठीक होगा, इसी से यह कहते हैं कि अगर वे लोग तहखाने में मिल जायं तो ताज्जुब नहीं।

शिवदत्त - अगर ऐसा हो तो क्या बात है! मगर सुनो तो कदाचित् वीरेन्द्रसिंह तहखाने में मिल गए तो तुम तो उनके फंसाने की फिक्र में लगोगे और मुझे किले के अन्दर घुसकर दखल जमाना होगा। मगर मैं उस तहखाने के रास्ते को जानता नहीं, तुम कह चुके हो कि तहखाने में आने-जाने के कई रास्ते हैं और वे पेचीले हैं, अस्तु ऐसी अवस्था में मैं क्या कर सकूंगा!

कल्याण - ठीक है मगर आपको तहखाने के कुछ रास्तों का हाल और वहां आने-जाने की तर्कीब मैं सहज ही में समझा सकता हूं।

शिवदत्त - सो कैसे?

कल्याणसिंह ने अपने पास पड़े हुए एक बटुए में से कलम, दवात और कागज निकाला। लालटेन को जो कुछ हटकर जल रही थी पास रखने के बाद कागज पर तहखाने का नक्शा खींचकर समझाना शुरू किया। उसने ऐसे ढंग से समझाया कि शिवदत्त को किसी तरह का शक न रहा और उसने कहा, "अब मैं बखूबी समझ गया।" उसी समय बगल से यह आवाज आई, "ठीक है, मैं भी समझ गया।"

वह पेड़ बहुत मोटा और जंगली लताओं के चढ़े होने से घना हो रहा था। शिवदत्त और कल्याणसिंह की पीठ जिस पेड़ की तरफ थी उसी की आड़ में कुछ देर से खड़ा एक आदमी उन दोनों की बातचीत सुन रहा और छिपकर उस नक्शे को भी देख रहा था। जब उसने कहा कि 'ठीक है, मैं भी समझ गया' तब ये दोनों चौंके और घूमकर पीछे की तरफ देखने लगे मगर एक आदमी के भागने की आहट के सिवाय और कुछ भी मालूम न हुआ।

कल्याण - लीजिये श्रीगणेश हो गया, निःसन्देह वीरेन्द्रसिंह के ऐयारों को हमारा पता लग गया।

शिवदत्त - बात तो ऐसी ही मालूम होती है, लेकिन कोई चिन्ता नहीं, देखो हम बन्दोबस्त करते हैं।

कल्याण - अगर हम ऐसा जानते तो आपके ऐयारों को दूसरा काम सुदुर्द करके आगे बढ़ने की राय कदापि न देते।

शिवदत्त - धन्नूसिंह को बुलाया चाहिए।

इतना कहकर शिवदत्त ने ताली बजाई मगर कोई न आया और न किसी ने कुछ जवाब दिया। शिवदत्त को ताज्जुब मालूम हुआ और उसने कहा, "अभी तो हाथ में नंगी तलवार लिये यहां पहरा दे रहा था, चला कहां गया' कल्याणसिंह ने जफील बजाई जिसकी आवाज सुनकर कई सिपाही दौड़ आये और हाथ जोड़कर सामने खड़े हो गये। शिवदत्त ने एक सिपाही से पूछा, "धन्नू कहां गया है!"

सिपाही - मालूम नहीं हुजूर, अभी तो इसी जगह पर टहल रहे थे।

शिवदत्त - देखो कहां है, जल्द बुलाओ।

हुक्म पाकर वे सब चले गए और थोड़ी ही देर में वापस आकर बोले, "हुजूर करीब में तो कहीं पता नहीं लगता!"

शिव - बड़े आश्चर्य की बात है। उसे दूर जाने की आज्ञा किसने दी?

इतने ही में हांफता-हांफता धन्नूसिंह भी आ मौजूद हुआ जिसे देखते ही शिवदत्त ने पूछा, "तुम कहां चले गये थे!"

धन्नू - महाराज कुछ न पूछिये, मैं तो बड़ी आफत में फंस गया था!

शिव - सो क्या! और तुम बदहवास क्यों हो रहे हो?

धन्नू - मैं इसी जगह पर घूम-घूमकर पहरा दे रहा था कि एक लड़के ने जिसे मैंने आज के सिवाय पहिले कभी देखा न था आकर कहा, "एक औरत तुमसे कुछ कहा चाहती है।" यह सुनकर मुझे ताज्जुब हुआ और मैंने उससे पूछा, "वह औरत कौन है, कहां है और मुझसे क्या कहा चाहती है" इसके जवाब में लड़का बोला, "सो सब-कुछ नहीं जानता, तुम खुद चलो और जो कुछ वह कहती है सुन लो, इसी जगह पास ही में तो है।" इतना सुनकर ताज्जुब करता हुआ मैं उस लड़के के साथ चला और थोड़ी ही दूर एक औरत को देखा। (कांपकर) क्या कहूं ऐसा दृश्य तो आज तक मैंने देखा ही न था।

शिव - अच्छा-अच्छा कहो, वह औरत कैसी और किस उम्र की थी!

धन्नू - कृपानिधान वह बड़ी भयानक औरत थी। काला रंग, बड़ी-बड़ी और लाल आंखें, हाथ में लोहे का डंडा लिये हुए थी जिसमें बड़े-बड़े कांटे लगे थे और उसके चारों तरफ बड़े-बड़े और भयानक सूरत के कुत्ते मौजूद थे जो मुझे देखते ही गुर्राने लगे। उस औरत ने कुत्तों को डांटा जिससे वे चुप हो रहे मगर चारों तरफ मुझे घेरकर खड़े हो गये। डर के मारे मेरी अजीब हालत हो गई। उस औरत ने मुझसे कहा, "अपने हाथ की तलवार म्यान में कर ले नहीं तो ये कुत्ते फाड़ खायेंगे।" इतना सुनते ही मैंने तलवार म्यान में कर ली और इसके साथ ही वे कुत्ते कुछ दूर हटकर खड़े हो गए। (लंबी सांस लेकर) ओफ-ओह! इतने भयानक और बड़े कुत्ते मैंने आज तक नहीं देखे थे!!

शिव - (आश्चर्य और भय से) अच्छा-अच्छा आगे चलो, तब क्या हुआ?

धन्नू - डरते-डरते उस औरत से पूछा - "आपने मुझे क्यों बुलाया?'

उस औरत ने कहा, "मैं अपनी बहिन मनोरमा से मिला चाहती हूं, उसे बहुत जल्द मेरे पास ले आ!"

शिव - (आश्चर्य से) अपनी बहिन मनोरमा से!

धन्नू - जी हां, मुझे यह सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ क्योंकि मुझे स्वप्न में भी इस बात का गुमान न हो सकता था कि मनोरमा की बहिन ऐसी भयानक राक्षसी होगी! और महाराज, उसने आपको और कुंअर साहब को भी अपने पास बुलाने के लिए कहा।

कल्याण - (चौंककर) मुझे और महाराज को?

धन्नू - जी हां।

शिव - अच्छा तब क्या हुआ?

धन्नू - मैंने कहा कि तुम्हारा सन्देशा मनोरमा को अवश्य दे दूंगा, मगर महाराज और कुंअर साहब तुम्हारे कहने से यहां नहीं आ सकते।

कल्याण - तब उसने क्या कहा?

धन्नू - बस मेरा जवाब सुनते ही वह बिगड़ गई और डांटकर बोली, "खबरदार ओ कम्बख्त! जो मैं कहती हूं वह तुझे और तेरे महाराज को करना ही होगा!!" (कांपकर) महाराज, उसके डांटने के साथ ही एक कुत्ता उछलकर मुझ पर चढ़ बैठा। अगर वह औरत अपने कुत्ते को न डांटती और न रोकती तो बस मैं आज ही समाप्त हो चुका था! (गर्दन और पीठ के कपड़े दिखाकर) देखिए मेरे तमाम कपड़े उस कुत्ते के बड़े - बड़े नाखूनों की बदौलत फट गए और बदन भी छिल गया, देखिए यह मेरे ही खून से मेरे कपड़े तर हो गये हैं।

शिव - (भय और घबड़ाहट से) ओफ-ओह धन्नूसिंह, तुम तो जख्मी हो गये! तुम्हारे पीठ पर के कपड़े सब लहू से तर हो रहे हैं!!

धन्नू - जी हां महाराज, बस आज मैं काल के मुंह से निकलकर आया हूं, मगर अभी तक मुझे इस बात का विश्वास नहीं होता कि मेरी जान बचेगी।

कल्याण - सो क्यों?

धन्नू - जवाब देने के लिए लौटकर मुझे फिर उसके पास जाना होगा।

कल्याण - सो क्या! अगर न जाओ तो क्या हो क्या हमारी फौज में भी आकर वह उत्पात मचा सकती है?

इतने में ही दो-तीन भयानक कुत्तों के भौंकने की आवाज थोड़ी ही दूर पर आई जिसे सुनते ही धन्नूसिंह थर-थर कांपने लगा। शिवदत्त तथा कल्याणसिंह भी डरकर उठ खड़े हुए कांपते हुए और उस तरफ देखने लगे। उसी समय बदहवास और घबराई हुई मनोरमा भी वहां आ पहुंची और बोली, "अभी मैंने भूतनाथ की सूरत देखी है, वह मेरी पालकी के पास आकर कह गया है कि 'आज तुम लोगों की जान लिये बिना मैं नहीं रह सकता'! अब क्या होगा! उसका बेखौफ यहां चले आना मामूली बात नहीं है!!"

(तेरहवां भाग समाप्त)

चंद्रकांता संतति - Chandrakanta Santati

चंद्रकांता संतति लोक विश्रुत साहित्यकार बाबू देवकीनंदन खत्री का विश्वप्रसिद्ध ऐय्यारी उपन्यास है।

बाबू देवकीनंदन खत्री जी ने पहले चन्द्रकान्ता लिखा फिर उसकी लोकप्रियता और सफलता को देख कर उन्होंने कहानी को आगे बढ़ाया और 'चन्द्रकान्ता संतति' की रचना की। हिन्दी के प्रचार प्रसार में यह उपन्यास मील का पत्थर है। कहते हैं कि लाखों लोगों ने चन्द्रकान्ता संतति को पढ़ने के लिए ही हिन्दी सीखी। घटना प्रधान, तिलिस्म, जादूगरी, रहस्यलोक, एय्यारी की पृष्ठभूमि वाला हिन्दी का यह उपन्यास आज भी लोकप्रियता के शीर्ष पर है।

बाबू देवकीनंदन खत्री लिखित चन्द्रकान्ता संतति हिन्दी साहित्य का ऐसा उपन्यास है जिसने पूरे देश में तहलका मचाया था। इस उपन्यास की लोकप्रियता का अंदाजा इस बात से ही लगाया जा सकता है कि इसे पढ़ने के लिए हजारों गैर-हिंदी भाषियों ने हिंदी सीखी। चंद्रकांता संतति उपन्यास को आधार बनाकर निरजा गुलेरी ने इसी नाम से टेलीविजन धारावाहिक बनाई। यह धारावाहिक दूरदर्शन के सर्वाधिक लोकप्रिय धारावाहिकों में शुमार हुई।

"चन्द्रकान्ता" और "चन्द्रकान्ता सन्तति" में यद्यपि इस बात का पता नहीं लगेगा कि कब और कहाँ भाषा का परिवर्तन हो गया परन्तु उसके आरम्भ और अन्त में आप ठीक वैसा ही परिवर्तन पायेंगे जैसा बालक और वृद्ध में। एक दम से बहुत से संस्कृत शब्दों का प्रचार करते तो कभी सम्भव न था कि उतने संस्कृत शब्द हम ग्रामीण लोगों को याद करा देते। इस पुस्तक के लिए वह लोग भी बोधगम्य उर्दू के शब्दों को अपनी विशुद्ध हिन्दी में लाने लगे जो आरम्भ में इसका विरोध करते थे।

काव्य के लिए ब्रज भाषा का प्रयोग होता था और गद्य के लिए खड़ी बोली का। लेखक ने इसी का अनुसरण करते हुए उपन्यास के काव्यांशों के लिए ब्रज भाषा चुना है।

चंद्रकांता संतति - Chandrakanta Santati in Hindi

1. चंद्रकांता संतति पहला भाग
2. चंद्रकांता संतति दूसरा भाग
3. चंद्रकांता संतति तीसरा भाग
4. चंद्रकांता संतति चौथा भाग
5. चंद्रकांता संतति पाँचवाँ भाग
6. चंद्रकांता संतति छठवां भाग
7. चंद्रकांता संतति सातवाँ भाग
8. चंद्रकांता संतति आठवाँ भाग
9. चंद्रकांता संतति नौवां भाग
10. चंद्रकांता संतति दसवां भाग
11. चंद्रकांता संतति ग्यारहवां भाग
12. चंद्रकांता संतति बारहवां भाग
13. चंद्रकांता संतति तेरहवां भाग
14. चंद्रकांता संतति चौदहवां भाग
15. चंद्रकांता संतति पन्द्रहवां भाग
16. चंद्रकांता संतति सोलहवां भाग
17. चंद्रकांता संतति सत्रहवां भाग
18. चंद्रकांता संतति अठारहवां भाग
19. चंद्रकांता संतति उन्नीसवां भाग
20. चंद्रकांता संतति बीसवां भाग
21. चंद्रकांता संतति इक्कीसवां भाग
22. चंद्रकांता संतति बाईसवां भाग
23. चंद्रकांता संतति तेईसवां भाग
24. चंद्रकांता संतति चौबीसवां भाग

https://www.hindiadda.com/chandrakanta-santati-part-xiii/